अखण्ड-ज्योति

जुलाई १९९१

सूची

इस पत्रिका के सभी लेख परम पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा लिखे गये हैं । हरिद्वार शांतिकुंज संस्थान से इनका सम्पादन कार्य होता है , वंदनीया माताजी अपनी तपसाधना में वहीं संलग्न हैं । पूज्य गुरुदेव की जीवन अवधि के अंतिम बीस वर्ष की साधना स्थली शांतिकुंज सप्त सरोवर क्षेत्र में हरिद्वार ऋषिकेश मार्ग पर हरिद्वार से ६ किलो मीटर दूर स्थित है ।

सम्पादक–भगवती देवी शर्मा
शांतिकुंज
हरिद्वार (उ.प्र.)
२४९४११

प्रकाशक–अखण्ड–ज्योति संस्थान, मथुरा–२८१००३

वर्ष ५४
अंक ७ संस्थापक—वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
जुलाई १९९१
वि. सं. आषाढ़ श्रावण २०४८

वार्षिक चन्दा
भारत में ३५/—विदेश में ३००/—
आजीवन ५००/—

सामूहिकता के चमत्कारी सत्परिणाम

एक बार कार्तिकी अमावस्या के घनघोर अंधकार में प्रकाश की आवश्यकता पड़ी । सूर्य से प्रार्थना की, उनने इस आपत्तिकालीन अनुरोध को अस्वीकार कर दिया । चन्द्रमा ने भी असमर्थता प्रकट की । कोई उपाय न देखकर एक दीपक ने जलना आरंभ किया । दूसरे बुझे हुओं ने सोचा जो एक कर सकता है, वह दूसरा क्यों न करे ? जब बुराई छूत की तरह फैल सकती है तो अच्छाई की लहरें भी एक दूसरे को सहारा देते हुए आगे क्यों नहीं बढ़ सकतीं ? दीपक एक दूसरे के निकट आते गयें । जलों ने बुझों को जलाया और नगण्य सी कीमत वाले दीपकों की पंक्ति देखते—देखते सर्वत्र जलने लगी । कार्तिकी अमावस्या इन जुगनूओं की चादर ओढ़कर सूर्य—पत्नी जैसी गौरवान्वित होकर इठलाने लगी । सभी ने दीपमालिका की जय बोली और उस दिन से वह सहकारी आदर्शवादिता महालक्ष्मी की तरह पूजी जाने लगी. ।

छोटों के छोटे काम भी मिलजुल कर बड़ों के बड़े कामों की प्रतिद्वन्द्विता कर सकते हैं । तिनकों से रस्सा बँटा जाता है । धागे मिलकर वस्त्र बुनते हैं । ईटें परस्पर जुड़कर महल खड़े करती हैं । सीकों से बुहारी व बूदों से घट भरता है । अणुओं के समन्वय से विराट की संरचना हुई है । इन सब पर विश्वास करने पर यह सोचने में तनिक भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि छोटों में सज्जनता का दौर चल पड़े तो उनके संयुक्त प्रयासों का प्रतिफल समष्टि को सतयुगी परिस्थतियों से भरपूर बना सकता है । बड़ों की प्रतीक्षा में बैठे रहने की अपेक्षा यही अच्छा है कि छोटे लोग मिलजुल कर नवसृजन के प्रयास करें । यही युग की माँग भी है ।

कीमती रत्न

ऐसा कौन सा जादू भरा है उस भिक्षु की वाणी में ? जो जनता विजयोत्सव के राग रंग उत्सव-उल्लास छोड़कर नीरस धर्म अध्यात्म के प्रवचन सुनने दौड़ पड़ी है । सम्राट के लिए यह एक विचित्र पहेली थी, उलझनों से भरी और नितान्त बेबूझ । अनेकों तरह की व्यूह रचना कर शत्रु को शिकस्त देने में कुशल राजनीति, कूटनीति, सैन्यनीति की पहेलियों को सुलझाने में माहिर अशोक से यह उलझन नहीं सुलझ रही थी । वह लोक प्रिय होना चाहता था । अपनी इस चाहत के लिए कितने ही तरह के नाच रंग उत्सव आयोजन करवाए लेकिन सब निष्फलप्रायः। इन सबके बीच पता नहीं कहाँ से उसकी क्रूरताओं की चर्चा निकल आती हिंसा भरे कारनामे जन समुद्र में ज्वार की तरह उफन पड़ते । फैल जाती आशंका भय दहशत की काली छाया । आम आदमी इससे दूर रहने में ही अपना कल्याण समझता ।

उधर कुछ ही दिन पहले आया यह भिक्षु, चारों ओर उसी के बारे में बातें । गली मुहल्लों घरों में उसके प्रवचनों की चर्चा । दिन प्रतिदिन उसे सुनने के लिए उमड़ती भीड़ का फैलाव बढ़ता ही जाता । सुना है वह अपने पास कुछ नहीं रखता-देह में लिपटे अधफटे चीवर के अलावा कुछ नहीं । सम्राट को अपने वैभव कोष समृद्धि पर गर्व था । कहाँ साधारण सा भिक्षु कहाँ भारत सम्राट अशोक ? इस तुलनात्मक चिन्तन के साथ उसने एक गर्व भरी नजर स्वयं पर डाली । पर दूसरे ही क्षण तथ्य के कठोर प्रहार से गर्व चकनाचूर हो गया । एक के पास जाने के लिए लोग अपना काम छोड़ कर दौड़ पड़ते हैं । दूसरे का नाम सुनते ही दहशत फैल जाती है । भिक्षु की इस लोकप्रियता का कारण ? वह कुछ सोच रहा था, शायद वह स्वयं भी जाना चाहता था । उस समय तक अशोक के लिए धर्म का कोई विशेष अर्थ न था ।

एक दिन सचमुच वह महाभिक्षु का प्रवचन सुनने पहुँच गया । भिक्षु मौद्गलायन का गरिमा मण्डित व्यक्तित्व बरबस किसी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था । अब उसे श्रावकों की संख्या के रोज बरोज बढ़ने समूची पाटलिपुत्र नगरी द्वारा विजयोत्सव को भूल बैठने के बारे में कुछ-कुछ अनुमान लग रहा था । लेकिन तथ्यपूर्ण कारणों से वह अभी तक अविदित था । कुछ सोचते हुए उन्होंने महाभिक्षु को भोजन के लिए निमंत्रण दे डाला । शायद सम्राट भिक्षु की निष्ठाओं को परखना चाहते हों । प्रतिपादित त्याग सादगी और आर्जव के आदर्श स्वयं भिक्षु के जीवन में कितनी गहराई तक समाविष्ट हैं । साथ ही उस कारण को खोजना जिसकी वजह से उसकी लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है ।

भोजन के बाद सम्राट ने उन्हें अपना महल घुमाया । हर कक्ष की एक-एक मूल्यवान वस्तु का परिचय देते समय उनके चेहरे पर अहं और दर्प की मिली जुली आभा देखने लायक थी । अन्त में वे एक विशाल आगार के सामने जाकर ठहर गए । यह रत्न भण्डार था । इसमें सुरक्षित बेशकीमती रत्नों को दिखाते हुए बोले "भिक्षु श्रेष्ठ ! ऐसे दुर्लभ रत्न भारत भर में कहीं न मिलेंगे ।"

"ओह !" भिक्षु के माथे पर सिलवटें गहराईं " तब तो इनसे राज्य को भारी आय होती होगी ।"

"आय ?" अशोक भिक्षु की नादानी पर मुसकराया । " इनकी सुरक्षा पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता है ।"

"इन पत्थरों से कीमती पत्थर मैंने आपके राज्य में देखा है । विश्वास न होता हो तो आप भी मेरे साथ चल कर देख लें ।" भिक्षु के कथन को सुन अशोक स्वयं को रोक न सका । कुछ ही समय बाद दोनों एक उपेक्षित गरीब बस्ती में प्रवेश कर रहे थे । सम्राट को आश्चर्य था ऐसी मूल्यवान चीज यहाँ ? वह कुछ अधिक सोचता.तब तक भिक्षु ने एक द्वार खटखटाया । थोड़ी देर बाद एक वृद्धा ने दरवाजा खोला । दोनों घर के अन्दर घुसे , भिक्षु ने एक कोने की ओर इशारा करते हुए कहा "यह है ।"

उस ओर देखकर अशोक को झुँझलाहट हुई । उसे अपने ऊपर भी अफसोस हुआ "क्यों इस मूर्ख भिक्षु के साथ आकर वह मूर्ख बना ।" झल्लाते हुए बोला "यह तो चक्की है ।"

"ठीक कहते हो । पर तुम्हारे सभी रत्नों से श्रेष्ठ है यह । वृद्धा के श्रम की सहयोगिनी । इस पर उसे कुछ खर्च नहीं करना पड़ता । उल्टे यह चक्की इस वृद्धा का इसके अन्धे पति और तीन बच्चों का पोषण करती है ।"

अशोक चुप था । उसे सूझ नहीं रहा था भिक्षु को क्या उत्तर दे ? भिक्षु उसके मन को पढ़ते हुए कह रहे थे "राजन् ! जीवन का रहस्य त्याग और पुरुषार्थ है । संग्रह में इन दोनों की अवहेलना है । संग्रह का अर्थ है स्वयं के ऊपर नियन्ता के ऊपर और जिस समाज में रहते हैं उस पर चरम अविश्वास । इन तीनों में जिसे एक पर भी विश्वास है वह क्यों संग्रह करेगा ? जिसे लोक पर विश्वास नहीं लोक उसे सम्मान क्यों देगा ? उसे अपना प्रिय क्यों मानेगा ?"

अशोक ने मुड़ कर भिक्षु की ओर देखा । भिक्षु की आँखों में इन तीनों विश्वासों की गहरी चमक थी । सम्राट को उसके फटे चीवर उसे सुनने के लिए उमड़ती भीड़ का कारण ज्ञात हो रहा था । कहते हैं अगले दिन सम्राट ने अपनी सम्पत्ति जनहित के कार्यों में समर्पित कर दी । इसी दिन से वह "देवानां प्रिय" बना । ✻

क्या ईश्वर पर मुकदमा चल सकता है ?

कोई न्यायनिष्ठ पिता अपनी सभी संतानों को समान दृष्टि से देखता और उन सबके लिए प्रायः समान स्तर के सामान जुटाता है। औचित्य इसी में है। कर्तव्य–परायण होने का दावा करने वाले मनुष्यों को भी प्रायः ऐसा ही आचरण करते देखा जाता है। सन्तानों के बीच भेदभाव और पक्षपात करने वाले अभिभावकों की न केवल सन्तानों द्वारा वरन् देखने सुनने वालों तक से इस कुकृत्य की भर्त्सना करते देखा जाता है। लड़के लड़की में भेद बरतने वालों के प्रति भी अब आक्रोश उभर रहा है और पक्षपात बरतने वालों को लेने के देने पड़ रहे हैं।

यदि इस चर्चा को थोड़ा और बढ़ाया जाय व समष्टि स्तर पर दार्शनिक विवेचना पर लागू किया जाय तो परमेश्वर की रीति–नीति के संबंध में यही तथ्य लागू होता देखा जा सकता है। आलोचक कह सकते हैं कि उसने कोटि–कोटि प्राणियों से भरी हुई इस विश्व वसुन्धरा में मात्र मनुष्य को ही विशेष प्रकार की समुन्नत स्तर की विभूतियाँ क्यों प्रदान कीं ? जब कि सृष्टि के अन्य प्राणी उन सुविधाओं से प्रायः वंचित ही रह गए हैं। ऐसे लचकदार हाथ पैरों की असाधारण संरचना वाला सर्वांग सुन्दर, खड़े होकर चलने वाला और अगणित प्रकार के असाधारण स्तर के कला–कौशलों को सम्पन्न करने वाला शरीर और किसका है ? इसकी खोजबीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य के अतिरिक्त और कोई जीवधारी इस स्तर का सृजा ही नहीं गया।

कायकलेवर की परत उघाड़कर कुछ गहराई तक उतरने पर प्रतीत होता है कि मात्र शरीर ही विलक्षण नहीं, वरन् उसकी भीतरी परत में एक विलक्षण स्तर का मनः संस्थान भी है। खोपड़ी की कड़ी चहारदीवारी के भीतर उसका निवास होने से आँखों द्वारा उसे प्रत्यक्ष देखा तो नहीं जा सकता परन्तु उसकी चिन्तन-परक क्षमताओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह जादुई पिटारे से कम आश्चर्यजनक किसी प्रकार है नहीं। कल्पना, विचारणा, निर्धारणा, भाव संवेदना, मान्यता, आस्था जैसी अगणित परतें इस पिटारी के भीतर विद्यमान हैं। यदि वे प्रसुप्त मूर्च्छित स्थिति में पड़ी रहें तो बात दूसरी है अन्यथा यदि उन्हें तनिक भी समुन्नत स्तर तक उठने का अवसर मिल जाय तो मनुष्य अगणित सफलताएँ अर्जित करने वाला सिद्ध पुरुष बन सकता है।

मनुष्यों में ही जब कुछ इस संस्थान को और अधिक विकसित कर लेते हैं, अपनी क्षमताएँ उभार लेते हैं तो वे ओजस्वी, तेजस्वी, मनस्वी कहलाते हैं। ज्ञान और विज्ञान से संबंधित अनेकानेक विशेषताएँ उभर पड़ती हैं। मनीषियों, दिव्यदर्शियों जैसी उच्चस्तरीय भूमिका निभाते उन्हें देखा जाता है। इंजीनियर, डाक्टर, आर्कीटेक्ट, योजनाकार, कलाकार स्तर की विशेषताओं से सम्पन्न तो मस्तिष्क को तनिक सा विकसित कर लेने मात्र से बना जा सकता है।

प्रश्न यह उठता है कि ऐसे ही सुविधा सम्पन्न शरीर और मस्तिष्क अन्यान्य प्राणियों को क्यों नहीं मिले ? यदि स्रष्टा को समदर्शी और न्यायनिष्ठ कहा जाता है तो उसने ऐसी अनीति क्यों बरती कि एक ही प्राणी को सृष्टि का मुकुट मणि बन सकने जैसी सुविधाएँ प्रदान करदीं और अन्य सभी को अनगढ़ स्थिति में समय गुजारने जैसे तुच्छ स्तर के कलेवर देकर बहका भगा भर दिया गया ? क्या यही ईश्वर का न्याय है ?

मोटी दृष्टि से विचार करने पर ऐसे अनेकों प्रश्न उठ खड़े होते हैं, जिनके कारण स्रष्टा में इतनी भर न्यायनिष्ठा नहीं दीख पड़ती, जितनी कि सामान्य लोगों में अपनी संतानों के बीच निष्पक्ष व्यवहार के रूप में देखी जाती है। नैतिकता, नीतिनिष्ठा गँवा बैठने पर तो कोई सत्ता ऐसी भी नहीं रह जाती जिसके प्रति श्रद्धा उपजे, जिसकी भक्ति करने के लिए विचार बने, जिसकी पूजा–अभ्यर्थना करने के लिए अन्तःकरण हुलसित हो ?

समर्थता ही तो सब कुछ नहीं है। अतीव शक्ति सम्पन्न महादैत्यों तक की नमन वन्दन की बात आने पर जब प्रचण्ड दमन सामने होते हुए भी मनुष्य ने डटकर सामना किया व कभी सिर नहीं झुकाया तो फिर ईश्वर का सर्व शक्तिमान होना भी वह निमित्त कारण नहीं बन सकता, जिसके लिए उसे उपास्य या आराध्य ठहराया

जा सके । मनुष्य का अपना भी तो विवेक है । उसने स्वयं भले ही अनीति बरती हो पर समर्थों के अन्याय को तो उसने बिना प्रबल विरोध किए नहीं छोड़ा । लगता है, फिर ईश्वर ही उस आक्रोश से क्यों कर बच सकेगा ?

बात जरा भी आगे बढ़े, तो सोचना पड़ता है कि जो मनुष्य अतिरिक्त रूप में उपलब्ध हुई विभूतियों का पग-पग पर दुरुपयोग करने के लिए उतारू रहता है, छल-प्रपंच अनाचार- शोषण-उत्पीड़न जैसे कुकर्मों का ताना बाना बुनता रहता है, उसी को भगवान ने यह छूट कैसे दे दी कि जैसे वह अन्यान्यों को बहकाकर अपना उल्लू सीधा करता रहता है, वही कुचक्र पूजा-पाठ का रूप बनाकर ईश्वर को वशवर्ती बनाने के लिए भी रच सकता है । वैसे ही लाभ वरदान रूप में पा सकता है जैसे कि पालतू पशुओं को बंधनों में जकड़ कर मन चाहा लाभ उठाया जाता है । ईश्वर इतना भोला कैसे व कब बन गया ? उपासना कराने की ललक उस पर ऐसी कैसी चढ़ बैठी कि तनिक से उपहार एवं चाटुकारों द्वारा की जाती रहने वाली मनुहार के पीछे छिपे छद्म को भी वह नहीं समझ सका ? पूजा अर्चा करने वालों के प्रपंच में फँस कर कैसे उन पर वरदान बरसाने लगा ? कैसे उन्हें भक्तजन मानकर पापों के परिणामों से छुड़ा देने का आश्वासन देने लगा ? इन विडम्बनाओं से विमोहित होकर क्यों उसने इन छद्म वेशधारियों के लिए स्वर्ग-मुक्ति के द्वार खोल दिए ? प्रतिमापूजन भर को कैसे वह अपनी भक्ति समझने लगा ? विडम्बनाओं और प्रवंचनाओं के बिखरे जंजाल को क्यों उसने सच्ची भक्ति जैसा कुछ समझ लिया ?

ऊपर वर्णित आरोप वजनदार हैं । यदि धर्मराज की अदालत में ईश्वर पर ये मुकदमें चलाए जा सकें तो विश्व व्यवस्था का दावेदार बनने वाले नियन्ता पर इन अभियोगों को तर्क और तथ्य का आधार बनाने वाला वकील इस प्रकार इलजाम सिद्ध कर सकता है कि अभियोग की यथार्थता प्रमाणित हो सके और भगवान को अभियुक्त के कटघरे में खड़ा होना पड़े ।

वकील के लिए, तार्किक के लिए क्या कुछ संभव नहीं । आस्तिकता या नास्तिकता जिसके समर्थन में चाहें, उनसे बहस करवा सकते हैं । यहाँ यह विवेचन किया जाना जरूरी है कि क्या उपरोक्त टिप्पणियों को नास्तिक की बकवास मात्र मानकर छोड़ दिया जाय या इन आरोपों को नकारने का प्रयास किया जाय । चलिए ईश्वर पर और आरोप न लगाकर अब उसकी वकालत की जाय ।

जहाँ मोटी दृष्टि से यह कथन सही है कि मनुष्य की शक्ति समस्त चेतन शक्तियों में सबसे अधिक बलवती है एवं उसने सभी अन्य शक्तियों को इसी बूते अपने वश में किया है, वहाँ यह भी देखा जाना चाहिए कि मनुष्य समस्त जीव जन्तुओं के समक्ष तुच्छ एवं नगण्य सामर्थ्य वाला जीव मात्र है । मनुष्य ने शेर को वश में किया है , हाथी पर अंकुश लगा कर सवारी की है, यह सही है किन्तु बलिष्ठता की दृष्टि से सैकड़ों जन्तु उससे अधिक बलवान हैं । यह बात अलग है कि वे धूर्त्त नहीं हैं इसलिए मनुष्य पर शासन नहीं कर पाते । मानवी इन्द्रियों की शक्ति भी अल्प ही है । न तो आँखों से वह मीलों दूर तक देख ही सकता है, न चीतों, हिरनों के समान अपने पैरों से भाग सकता है । न हाथी के बराबर बोझ ही ढो सकता है । आँखों से अगणित आकृतियाँ व रंग ऐसे हैं जो उसे नहीं दिखाई देते और जीवों को दिखाई देते हैं । सैकड़ों प्रकार की श्रवणातीत ध्वनियाँ उसे सुनाई नहीं देती । घ्राण शक्ति की सामर्थ्य उसकी नगण्य मात्र है, जबकि इसके सहारे अन्य जीव न केवल अपनी रक्षा करते हैं, मनुष्य की भी करते देखे जाते हैं ।

जिस ज्ञान पर मनुष्य को इतना अभिमान है कि वह बलिष्ठ से बलिष्ठ प्राणियों को दास बना सकता है और दूर से दूर अपनी शक्तियों का प्रभाव पहुँचा सकता है, वह ज्ञान भी उसका इतना अल्प है कि न मनुष्य को सर्वज्ञ कह सकते हैं, न बहुज्ञ । जो बात वह जानना चाहता है, उससे कहीं अधिक इस जगत में ऐसा है जिसे जानना शेष है । उपनिषदकार ने इसी बात को बड़े अच्छे ढंग से कहा है -"अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमवि-जानताम्" अर्थात् "बुद्धिमानों के लिए वह अज्ञात है और मूर्खों के लिए ज्ञात" मूर्ख ही सर्वाधिक यह ढिंढोरा पीटते देखे जाते हैं कि संसार की तीन चौथाई बुद्धि उनके पास है शेष एक चौथाई में संसार बँटा हुआ है । न्यूटन कहते थे " ज्ञान का अपार सागर मेरे सामने बह रहा है किन्तु मैं उसके तट पर बैठा कुछ कंकड़ मात्र चुन रहा हूँ ।" बात वस्तुतः यही सही है ।

पराक्रम कलाकारिता की दृष्टि से देखें तो जो विभूतियाँ जीव जन्तुओं को मिली हैं, वह मनुष्य के पास

स्वल्प मात्रा में भी नहीं हैं । बर्र जैसी काटने वाली मक्खी का छत्ता हो या मधु मक्खी का, बया का घोंसला हो या दीमकों की बाँबी सब कुछ इतनी सुव्यवस्थित हैं कि इनकी बनाई सभी नकलों से मनुष्य कितनी ही तारीफ प्राप्त कर ले, वह उसकी मौलिक रचना नहीं कही जा सकती । कहीं से भी तो यह सिद्ध नहीं होता कि स्रष्टा के यहाँ अन्याय है । यदि उसने मनुष्य को कुछ दिया है तो दूसरी ओर अन्यान्य जीव जन्तुओं छोटे-छोटे जीवाणुओं से लेकर सभी सचेतन जीवधारियों को किन्हीं न किन्हीं विशेषताओं से अलंकृत किया है । दूसरी ओर मनुष्यों में से अगणित यह कहा जाय कि निन्यानवे फीसदी ऐसे हैं जो प्राप्त वैभव की जानकारी के अभाव में सामान्य जीवन जीते व ईश्वर ही नहीं अन्य जीवधारियों की दृष्टि में भी उपहास के पात्र बनते देखे जाते हैं । शिश्नोदर प्रधान जीवन मात्र पेट और प्रजनन के लिए जीवन जीना तो अधिकांश मानव तनधारियों को आता है पर इससे आगे की बात बहुत कम को सूझ पाती है । बहुत कम ऐसे होते हैं जो प्रसुप्त को उभार कर अतिमानवीय अतीन्द्रिय क्षमताओं द्वारा आत्मसत्ता को निहाल सकें । यह आत्मबोध के अभाव अल्पज्ञता, तथा कषायकल्मषों के आवरण से मुक्ति न पा सकने की विडम्बना की फल-श्रुति मात्र है ।

ज्ञान हमेशा अपूर्ण है, वह वैसा ही रहेगा । वह मनुष्य को सतत चुनौती देता रहता है कि अभी तो सृष्टि में बहुत कुछ अविज्ञात है, वह अपना पुरुषार्थ जारी रखे । इस तरह यह अभिमान करना व कहना कि मानव बहुज्ञ है व पक्षपातपूर्वक उसे ज्येष्ठ बनाया गया है, नितांत भ्रामक प्रचार है ।

दूसरी ओर भगवान पर यह आरोप लगता है कि वह मनुष्य को जो कुछ चाहे करने की छूट देता रहता है, यहाँ तक कि पूजापाठ द्वारा स्वयं भी मनुष्य का वशवर्ती बन जाता है, तनिक सी मनुहार से प्रसन्न हो जाता है । वस्तुतः ईश्वरीय सत्ता जो भी कुछ है, जहाँ पर भी है, एक अनुशासित विधि व्यवस्था के रूप में विद्यमान है । जितनी नास्तिकता ईश्वर के नाम पर चित्र विचित्र कृत्य करने वालों ने आडम्बरों आदि के माध्यम से इस जगती पर फैलाई है, उतनी तो प्रच्छन्न नास्तिकों ने भी नहीं फैलाई । स्रष्टा एक नियम है, नियामक तंत्र का पर्यायवाची है तथा यहाँ जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है । न्यूटन का तीसरा नियम यहाँ पूरी सत्यता से लागू होता है कि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । इस तरह ईश्वर चाटुकारिता से नहीं मात्र श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न होता है । वह स्वयं सत्प्रवृत्तियों का, श्रेष्ठता का, आदर्शों, का, सद्गुणों का समुच्चय है । वह भला छिटपुट मूर्ख बनाने वाली हरकतों से प्रभावित कैसे होगा ?

पूजा अर्चा की भूमिका अपनी जगह है पर वह न कर जो मानव मात्र के कल्याण के लिए पुरुषार्थरत रहते हैं, वे दैवी अनुग्रह व लोक सम्मान पाते हैं, वह देखा जाना चाहिए । दूसरी ओर दुनिया भर की गन्दगी मन में रखकर बहिरंग जगत में पूजा उपासना का ढोंग रचने वाले दीन-हीन ही देखे जाते हैं व अंततः किये गये कृत्यों का दुष्परिणाम भी भुगतते हैं ।

एक दुबला कुत्ता था । तालाब के किनारे खड़ा उसमें अपनी परछाईं देख रहा था । प्यासा तो था पर पीने की हिम्मत न पड़ती थी , क्योंकि परछाईं वाले कुत्ते का हमला हो जाने का डर था ।

बहुत देर हो गई । प्यास बढ़ने लगी तो उसने हिम्मत की और जो होगा देखा जायेगा सोचते हुए पानी में घुस पड़ा । जी भर कर पानी पिया । साथ ही सामने खड़ा दीखने वाला उस वक्त कुत्ता भी गायब हो गया ।

डर वास्तव में अपनी ही परछाईं हैं । जब तक उससे घबराते रहते हैं तभी तक वह डराती रहती है । कदम बढ़ा देने पर फिर ऐसा कुछ नहीं रहता जो पहले लगता था ।

यदि ईश्वर की सत्ता पर हमें विश्वास दृढ़ हो तो उपरोक्त विवाद की जड़ में निहित कुतर्कों का पर्दाफाश देखते-देखते हो जाता है । ईश्वर संवेदना का, सरस-शाश्वत आनंद से लबालब अंतःकरण का नाम है । ईश्वर इकॉलाजी है, सुव्यवस्था बनाए रखने वाला एक निराकार मैनेजर है । यदि आस्तिकता के ये कुछ सूत्र ध्यान में रहें तो मन-मस्तिष्क पर छाया कुहासा मिट जाता है व हमें सत्य दिखाई देने लगता है । ☀

उद्दण्डता पर क्षमा की प्रतिक्रिया

आम तौर से दुष्ट प्रकृति के उत्तेजनाग्रस्त व्यक्ति अपनी इच्छा के विरुद्ध कहीं कुछ होते देखते हैं तो आपे से बाहर हो जाते हैं और कटुवचन कहने, धमकी देने से लेकर दुर्व्यवहार तक करने लगते हैं । ऐसी गलती प्रायः दुर्बल मानस के व्यक्तियों से ही होती है । पतली धातु का वर्तन थोड़ी सी गर्मी पाने पर गरम हो जाता है, पर यदि वह भारी भरकम होगा तो उसको गरम होने में देर लगेगी ।

उत्तेजनाग्रस्त को मानसिक दृष्टि से दुर्बल ही मानना चाहिए, भले ही वह शारीरिक दृष्टि से मोटे-ताजे ही क्यों न हों । गुस्सा अक्सर ऐसे ही लोगों को अधिक आता है । वे आवेश की स्थिति में यह सोच नहीं पाते कि दूसरा व्यक्ति यदि उसका बदला लेने पर उतारू हो गया तो अपने ऊपर क्या बीतेगी ? कितना नुकसान उठाना पड़ेगा ? जिनके साथ सहज सद्भावना बनी रहती थी, उन्हें कटुवचन कहकर या दुर्व्यवहार करके कितना अप्रसन्न किया जा सकता है और वह अप्रसन्नता तात्कालिक या फिर कभी अवसर मिलने पर क्या हानि पहुँचा सकती है नासमझी ही वस्तुतः कटु व्यवहार का कारण होती है ।

दुर्बलों पर दया बरतने का विधान है । बच्चे कुछ गलती करते हैं तो उनको साधारण धमकी या प्रताड़ना देकर बात समाप्त कर दी जाती है , क्योंकि उनकी समझ में आ जाता है कि समर्थ व्यक्ति यदि दण्ड देने या बदला लेने पर उतारू हो जाय तो लेने के देने पड़ेंगे । प्रतिशोध का परिणाम अनुभव करने पर भी ऐसे उद्दण्ड व्यक्ति सहम जाते हैं और कहने में आ जाते हैं । दूसरी बार वैसी ढिठाई भी नहीं करते । पर यदि कोई अहंकारी दुर्बल होते हुए भी अपने को समर्थ समझे और दुर्व्यवहार पर उतारू हो तो स्थिति बदल जाती है । ऐसा व्यक्ति सचमुच ही अहंकार बढ़ने पर पहले की अपेक्षा और भी बड़ी ढीठता बरतने लगता है । उसका बढ़ा हुआ उत्साह दूसरों को तो हानि पहुँचाता ही है । स्वयं उसके लिए भी भारी पड़ता है क्षमा किए जाने पर भी वह उसका महत्व समझता नहीं व दूसरों की सज्जनता का लाभ उठाते हुए और उद्दण्ड बन बैठता है ।

क्षमा का धर्म शास्त्र में बड़ा महत्व है । उसे अपनाने के लिए समय-समय पर उसके पक्ष में उदाहरण दिये जाते रहे हैं और उसे धर्मनिष्ठा का चिन्ह माना गया है । किन्तु उसे अपनाते समय परिस्थितियों का भी ध्यान रखना चाहिए । दुष्टों को दिया गया दान भी पाप के समतुल्य बन जाता है क्योंकि वे उस सहायता का दुरुपयोग कर अधिक बढ़े-चढ़े दुष्कर्म करते हैं । अपने लिए तथा अन्य लोगों के लिए ऐसी सहायता हानि पहुँचाने में समर्थ होती है । इसलिए दान देने का विधान जहाँ भी है वहाँ यह भी कहा गया है कि वह सहायता सत्पात्रों की ही की जाय । कुपात्र के दुरुपयोग करने पर वह सहायता पुण्य की अपेक्षा अधिक पाप का भागी बनाती है ।

छोटे बालक या बीमार व्यक्ति कुछ गलती करते हैं तो समर्थ व्यक्ति उस पर ध्यान नहीं देते और क्षमा कर देते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि वे दुर्बलतावश कुछ कर सकते नहीं।

> *वास्तविक शिक्षा वह है जो अपने को सुधारना और दूसरों को सँभालना सिखाये ।*

शारीरिक या मानसिक दण्ड पाकर और अधिक दुर्गति के भागी बनेंगे जिसे दण्ड देने की अपने में सामर्थ्य हो उसको उदारतावश क्षमा भी किया जा सकता है । उस पर उदारता दिखाई जा सकती है । आवेश उतर जाने पर वह उस अहसास के बदले कृतज्ञता भी व्यक्त कर सकता है । उदारता का व्यवहार उसे सज्जनता की शिक्षा भी दे सकता है और कभी अपने साथ वैसी उद्दण्डता घटित हो तो वह उसी प्रकार का उदार व्यवहार भी कर सकता है । इसी प्रकार धर्मधारणा की अभिवृद्धि भी हो सकती है ।

किन्तु यदि उद्दण्ड अहंकारी, कुकर्मी, उच्छृंखल को, अनाचारी को यदि क्षमा की आड़ में प्रश्रय देते हुए निज की दुर्बलता को छिपाया जाता है तो फिर कायर और क्षमाशील में क्या अंतर रह जाएगा ? लोक व्यवहार में इसीलिए क्षमा का प्रयोग करते समय परिस्थितियों और प्रतिक्रिया को पहले भली प्रकार समझ लेने की बात कही जाती है । ✻

भावसरोवर में घुली विषाक्तता कैसे मिटे ?

इन दिनों सबसे बड़ी तात्कालिक समस्या यह है कि हर क्षेत्र में छाई हुई विपन्नताओं से किस प्रकार छुटकारा पाया जाय और उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए क्या किया जाय, जिससे निरापद और सुविकसित जीवन जी सकना संभव हो सके ।

प्रस्तुत कठिनाइयों का कारण अभावग्रस्तता को मान लिया गया है । इसी मान्यता के आधार पर यह सोचा जा रहा है कि साधन सुविधाओं वाली सम्पन्नता की अधिकाधिक अभिवृद्धि की जाय जिससे अभीष्ट सुख-साधन उपलब्ध होने पर प्रसन्नतापूर्वक रहा जा सके । मोटे तौर पर अशिक्षा, दरिद्रता और अस्वस्थता को प्रमुख कारणों में गिना जाता है और इनमें प्रगति के लिए ज्ञान और विज्ञान के आधार पर कुछ ऐसा, कुछ इतना उपलब्ध करने के लिए आयोजन-नियोजन किया जाता है जो अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है । नीति निर्धारण का औचित्य भी है पर देखना यह है कि वस्तु स्थिति न समझ पाने और वास्तविक व्यवधानों के सम्बन्ध में तह तक पहुँचे बिना जिन निष्कर्षों के लिए प्रबल प्रयत्न किये जा रहे हैं या किये जाने वाले हैं वे कारगर भी हो सकेंगे या नहीं ।

दरिद्रता को ही लें । मनुष्य की शारीरिक-मानसिक समर्थता इतनी अधिक है कि उसके सहारे अपना ही नहीं अपने परिवार के अनेकों का भली प्रकार गुजारा किया जा सके । साथ ही ऐसा भी बहुत कुछ बनाया जा सके जो सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने वाले पुण्य परमार्थ में भी लगाया जा सके । प्रगतिशील जनों में से असंख्यों ऐसे हैं जिनके पास न तो कोई पैतृक सम्पदा थी और न बाहर वालों की ही कोई कहने लायक सहायता मिली । फिर भी वे अपनी मनस्विता और पुरुषार्थ परायणता के आधार पर आगे बढ़ते और ऊँचे उठते चले गये । सफलता के उस उच्च शिखर पर जा पहुँचे, जिसे देखते हुए उस उत्कर्ष को जादुई जैसा कहा जाने लगता है । पर वस्तुतः उन सफलताओं के पीछे एक ही रहस्य काम कर रहा होता है कि उनने अपनी उपलब्ध सुविधाओं का सुनियोजन किया और बिना भटके, मचले नियत उपक्रम अपनाये रहे । प्रकृति का समर्थन ऐसों को ही मिलता है । जन सहयोग भी उन्हीं के पीछे लग लेता है, जिनमें सद्गुणों का सत्प्रवृत्तियों का बाहुल्य होता है । इसी विधा का अनुकरण करने के लिए यदि तथाकथित दरिद्रों को भी सहमत किया जा सके तो वे आलस्य प्रमाद की, दीनता हीनता की केंचुल उतार कर नये चोले में विकसित हुए सर्प की तरह अभीष्ट दिशा में अपने बलबूते ही इतना कुछ कर सकते हैं जिसे सराहा और सन्तोषप्रद माना जा सके ।

इसके विपरीत यदि बाहरी अनुदानों पर ही निर्भर रहा जाय तो जो मिलता जायगा वह हाथों-हाथ फूटे घड़े में पानी भरते जाने की तरह अन्ततः खाली हाथ रहने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले पड़ेगा नहीं । दुर्व्यसनों के रहते आसमान से बरसने वाली कुबेर की सम्पदा भी अनगढ़ व्यक्तियों के पास न ठहर कर सीधी पाताल में उतरती जायेगी । अनुदानों की योजना वैसा कुछ प्रतिफल प्रस्तुत न कर सकेगी जिसकी आशा की गयी थी ।

अशिक्षा का कारण यह नहीं कि पुस्तकें, कापियाँ, कलमें मिलना बंद हो गयी हैं या इतनी निष्ठुरता भर गयी है कि पूछने पर कुछ बता देने के लिए कोई तैयार नहीं होता, वरन् वास्तविक कारण यह है कि शिक्षा का महत्व ही अपनी समझ में नहीं आता और उसके लिए उत्साह नहीं उभरता । पिछड़े क्षेत्रों में खोले गये स्कूल प्रायः छात्रों के अभाव में खाली पड़े रहते हैं और नियुक्त अध्यापक रजिस्टरों में झूठी हाजरी लगा कर खाली हाथ वापस लौट जाते हैं । यदि उत्साह उमगे तो जेल में लोहे के तसले की पट्टी और कंकड़ को कलम बनाकर विद्वान बन जाने वाले का उदाहरण हर किसी के लिए वैसा ही चमत्कार प्रस्तुत कर सकता है । उत्कण्ठा की मनःस्थिति रहते सहायकों की सहायता की कमी भी रहने वाली नहीं है ।

समर्थता व्यायामशालाओं में, टानिक बेचने वालों की दुकानों में नहीं पायी जा सकती है उसके लिए संयम साधना और सुनियोजित दिनचर्या अपनाने भर से अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है । जब कि दूसरों

का रक्त अपने शरीर में प्रवेश करा लेने पर भी उन उपलब्धियों का अन्त थोड़े ही समय में हो जाता है। काम तो अपने निजी रक्त उत्पादन के सुव्यवस्थित हो जाने पर ही चलता है।

अधिक उत्पादन अधिक वितरण के लिये किये गये बाहरी प्रयास तब तक सफल हो सकेंगे जब तक कि मनुष्य का निजी उत्साह और आत्म विश्वास ऊँचे स्तर तक उभर न जाय। भूल यहीं होती रहती है कि मनुष्य को दीन दुर्बल, असहाय असमर्थ मान लिया जाता है और उसकी अनगढ़ आदतों को सुधारने की अपेक्षा अधिक साधन उपलब्ध कराने की योजनाएँ बनती और चलती रहती हैं। लम्बा समय बीत जाने और लम्बा समय साधन खप जाने पर भी जब स्थिति यथावत् बनी रहती है तब प्रतीत होता है कि कहीं कोई मौलिक भूल हो रही है। जबकि सुधारा सर्व प्रथम उसी को जाना चाहिए था।

एक भ्रम यह भी जन साधारण पर हावी हो गया है कि सम्पदा के आधार पर ही प्रगति हो सकती है। यह भ्रम इसलिए भी पनपता और बढ़ता है कि धनियों को ठाट बाट से रहते, गुलछर्रे उड़ाते देखकर यह अनुमान लगा लिया जाता है कि वे सुखी भी हैं और सम्पन्न भी। पर लवादा उतार कर जब इस वर्ग को नंगा किया जाता है तो ज्ञात होता है कि उसके भीतर एक अस्थिपंजर ही किसी प्रकार सांसे चला रहा है। प्रसन्नता के नाम पर उन्हें चिन्तायें ही खाये जा रही हैं। ईर्षा, आशंका से लेकर अपने अपनों के दुर्गुण, दुर्व्यसन स्थिति को पूरी तरह उलट कर रखे दे रहे हैं। सम्पन्नता का सदुपयोग न बन पड़ने पर उस वर्ग के लोगों को औसत नागरिक की तुलना में कहीं अधिक उद्विग्न, रुग्ण और चिन्तित देखा जाता है चिन्ता जीवन के आनन्द का बुरी तरह अपहरण कर लेती है। बुद्धिमानों और सम्पन्नों की विशेषता ही मिलजुल कर ऐसे प्रपंच रचती रहती है जिनके आधार पर सर्वसाधारण को गई गुजरी स्थिति में पड़े रहने के लिए बाधित होना पड़े। मुड़कर देखने पर प्रतीत होता है कि जब तथाकथित शिक्षा का, सम्पदा का, विज्ञान स्तर की चतुरता का इतना अधिक विकास नहीं हुआ था तब तक मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, सुखी, संतुष्ट और हिलमिल कर मोद मनाने की स्थिति में था। बढ़ी हुई समृद्धि ने तो वह सब भी छीन लिया जो मनुष्य ने लाखों वर्षों के अध्यवसाय के सहारे सभ्यता और सुसंस्कारिता उच्चस्तरीय उपार्जन अतीव दूरदर्शिता के साथ अर्जित किया था।

यहाँ सुविधा साधनों को दुर्गति का कारण नहीं बताया जा रहा है वरन् यह कहा जा रहा है कि उनका सदुपयोग बन पड़ा होता तो स्थिति उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी होती जिस समय साधन तो कम थे पर विकसित भाव चेतना के आधार पर स्वल्प उपलब्धियों का भी मनुष्य श्रेष्ठतम उपयोग कर लेता था और अपने को ही नहीं समूचे समुदाय को, वातावरण को सच्चे अर्थों में समृद्ध, समुन्नत बनाये रहने में पूरी तरह सफल रहा करता था। सतयुग ऐसे ही वातावरण को निरूपित किया जाता रहा है।

तथाकथित प्रगति का विशालकाय सरंजाम जुट जाने पर भी भयानक स्तर की अवनति का वातावरण क्यों कर बन गया? इसका उत्तर यदि गंभीरता से सोचा जाय तो तथ्य एक ही हाथ लगेगा कि बुद्धि भ्रम ने उभर कर अनर्थ सँजोये हैं। फिर क्या बुद्धि को कोसा जाय? उसकी दिशाधारा का निर्धारण तो भाव संवेदनाओं के आधार पर होता है। भावनाओं में नीरसता, निष्ठुरता जैसी विषाक्तताएँ घुल जायँ तो फिर तेजाबी तालाब में जो कुछ भी गिरेगा, देखते-देखते अपनी स्वतंत्र सत्ता को उसी में गला घुला देगा। भाव संवेदना में विषाक्तता का घुल जाना उस क्षेत्र में विकृतियों का जखीरा जम जाना ही एक मात्र ऐसा कारण है जिसके कारण समृद्धि और चतुरता का विकास विस्तार होते हुए भी उलटी सर्वतोमुखी विपन्नता ही हाथ लग रही है। सुधार तलहटी का करना पड़ेगा। सड़ी कीचड़ के ऊपर तैरने वाला पानी भी अपेय होता है। दुर्भावनाओं के रहते दुर्बुद्धि ही पनपेगी और उसके आधार पर दुर्गति के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगेगा नहीं। *

बादल गरज रहे थे। उन्हें गरजते बहुत देर हो गई पर उससे कुछ खास बात नहीं हुई। पर जब एक बार बिजली कड़की और गिरी तो कई पेड़ जल कर खाक हो गये।

एक व्यक्ति बादलों की गरज को बहुत महत्व दिया करता था। उन्हीं में शक्ति भरी मानता था। पर जब उसने इस बार में घटनाक्रम को देखा तो अपना विचार बदल दिया। समझा कि गरजने वाले चमत्कार नहीं दिखाते सामर्थ्य तो चमकने वाली शक्ति में ही होती है।

इसके बाद उसने अपनी आदत सुधारी गरजना बंद कर दिया और चमकने वाली पद्धति अपनाई।

भव बंधनों से मुक्ति

तत्वदर्शियों ने मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ एक ही बताया है —"मोक्ष" मुक्ति । मोक्ष अर्थात् भव बंधनों से छुटकारा । भव बन्धनों में मानसिक लिप्साएँ और कुत्साएँ ही प्रमुख कारण होती हैं । जन्मधारण में लालसाएँ ही प्रमुख कारण होती हैं । आकर्षण और प्रलोभन ही जन्म धारण करने के लिए विवश करते हैं । रोष, आक्रोश प्रतिरोधों की जलन मिटाने के लिए प्रायः जन्म धारण करना पड़ता है , अशुभ कर्मों के दंड भुगतने के लिए भी ऐसी परिस्थितियों में जन्म धारण करना पड़ता है , जिनमें आये दिन शारीरिक कष्ट और मानसिक त्रास बरसते हैं ।

चौरासी लाख योनियों में सभी भोग योनियाँ हैं । उनके जन्म मरण का चक्र प्रकृति गति से चलता रहता है । केवल मनुष्य योनि ही ऐसी है, जिसमें भव–सागर से पार होने का द्वार है । इस अवसर का प्राप्त होना एक अनुपम सौभाग्य है । यदि सतर्कता रखी और सावधानी बरती जाय, तो उस त्रास से छुटकारा मिल सकता है, जिसमें बँधा हुआ जीव निरन्तर व्यथा–वेदनाओं की पीड़ा सहन करता रहता है ।

आत्मा और शरीर की मध्यवर्ती कड़ी है–मनःचेतना । उसमें अनेकानेक कल्पनाएँ कामनाएँ उठती रहती हैं । आकर्षणों की यहाँ कमी नहीं । सभी ज्ञानेन्द्रियों में अपने–अपने स्वाद हैं । जिस प्रकार व्यंजनों में षड्रस होते हैं, उसी प्रकार आँख, कान, नासिका जीभ जननेन्द्रिय सभी के अपने–अपने स्वाद हैं । इनका रसास्वादन करने के लिए मन सदा मचलता रहता है । यों इन इन्द्रियों के सदुपयोग भी हैं । नेत्रों से प्रेरणाप्रद सत्प्रवृत्तियों को देखा जाय । जिवहा से सीमित मात्रा में सात्विक आहार करके पेट को, समूचे स्वास्थ्य को सही रखा जाय । सत्परामर्श देकर वाणी को धन्य बनाया जाय । कानों से सत्संग सुना जाय । नासिका के सहारे सुगंधित वातावरण में रहकर मन और मस्तिष्क को प्रसन्न रखा जाय । जननेन्द्रिय का संयम साधकर ब्रह्मचारी, तपस्वी, उर्ध्वरेता बना जाय । यह सदुपयोग है । दुरुपयोग करना हो, तो आँखें कामुकता भड़का सकती हैं । जीभ चटोरी होकर स्वास्थ्य का सर्वनाश कर सकती है । जननेन्द्रिय व्यभिचार में प्रवृत्त होकर अपना और दूसरों के शारीरिक मानसिक आर्थिक प्रतिष्ठा क्षेत्र को नष्ट–भ्रष्ट कर सकती है । इन्द्रिय लोलुप व्यक्ति लिप्साओं में फँसकर अपनी आदतें बिगाड़ते हैं , अतृप्त अशान्त उद्विग्न रहते हैं और अगले जन्म में उन्हीं के रसास्वादन के लिये भटकते रहते हैं , अधोगामी योनियों में जन्म पाते हैं ।

मानसिक लिप्साओं में लोभ, मोह और अहंकार प्रधान हैं । अधिकाधिक समृद्ध सम्पन्न वैभवशाली बनने के लिए व्यक्ति अनाचारपूर्वक कमाता है । अपराधी दुष्प्रवृत्तियों में संलग्न रहता है । मोह में परिवार बढ़ाता है । बढ़े हुए परिवार के प्रति बहुत कुछ करने, बहुत कुछ उत्तराधिकार में छोड़ने की ललक लगी रहती है । अहंकारी अपना बड़प्पन प्रकट करने के लिए झूठ बोलता, शेखी बघारता, ठाट–बाट जमा करता है ।अमीरी जताने के लिए अपव्यय में बहुत कुछ ठगाता उड़ाता है । श्रृंगार की सजधज प्रकारान्तर से कामुकता में विकसित परिणत होती है । इनका प्रतिफल मनोभावों की इन्हीं कामनाओं में जकड़ जाना है और पतंगे की तरह इन दीप शिखाओं पर जल मरना है । चासनी में फँसी मक्खी की तरह तड़प–पड़प कर मरना है ।

अहंकारी व्यक्ति अपने आप में ही इठलाता रहता है । दूसरों का दोष हो या न हो, अपनी प्रभुता, अमीरी , सुन्दरता बुद्धिमत्ता स्वल्प होने पर भी वस्तु स्थिति से कहीं अधिक बड़ी मालूम पड़ती है । अपनी मान्यता को दूसरे के गले उतारने के लिए चापलूसी से लेकर धमकी देने तक के अनेक आडम्बर बनते हैं । यदि दाल नहीं गलती, तो फिर असाधारण रूप से खीज आती है । कभी अपने ऊपर कभी दूसरों के ऊपर । वस्तुओं की आवश्यकता ऋण लेकर या दूसरों की सहायता से भी पुरी की जा सकती है , किन्तु उस अहंकार की पूर्ति प्रायः असंभव ही रहती है, जो वास्तविकता न होने पर भी दूसरों के सिर पर चढ़कर हावी होना चाहती है । इस प्रपंच में अपव्यय भी बहुत करना पड़ता है । फिर उस अपव्यय के साधन जुटाने के लिये अनेकानेक प्रकार की चिंताएँ सवार रहती हैं । पाखण्ड को छिपाये रहने और दूसरों से उसे स्वीकार कराने के लिए ऐड़ी– चोटी का पसीना एक करना पड़ता है । इतने पर भी सफलता मिले या न

मिले, यह संदिग्ध रहता है । ऐसे व्यक्ति क्रोधी भी होते हैं । विनम्र, नम्रता को [illegible] घटते चले जाने से व्यक्ति क्रमशः अधिकाधिक उद्धत बनता जाता है । उद्धत के अहंकार की पूर्ति में जब कभी अड़चन पड़ती है, तो वह क्रोध से उबल पड़ता है । फिर चाहे उसके कारण दूसरों से द्वेष बनता हो या अपना सन्तुलन बिगड़ने से खीज का आवेश चढ़ता हो ।

मनुष्य के हाथ पैर में हथकड़ी बेड़ी तो तभी पड़ती हैं, जब उसे किसी अपराध में जेल जाना पड़ता है, किन्तु मनोविकारों के बंधन ऐसे हैं, जो इस प्रकार जकड़ते हैं, मानों किसी भयंकर व्यथा ने जकड़ लिया हो । आध्यात्मिक चिकित्सा उसकी होती नहीं । इच्छानुकूल परिस्थितियाँ बनने या बनाने की उत्कंठा रहती है, विश्व व्यवस्था ऐसी है, नहीं कि किसी उद्धत व्यक्ति के अनुरूप लोक प्रवाह बन पड़े या चल सके । ऐसी दशा में दोहरे दबाव अनुभव करने पड़ते हैं । एक तो यह कि जैसा चाहा गया था, वैसा बनता नहीं । दूसरे प्रतिकूलता रहने पर आवेशों के उभार उठते रहते हैं । वह विवेक इस विषमता के बीच तिरोहित ही हो जाता है, जिसके आधार पर कि ताल मेल बिठाया जा सके और मनोवांछा पूरी न होने पर भी संतोषपूर्वक मन को संतुलित रखते हुए समय गुजारा जा सके । ऐसी ही विपन्न परिस्थितियों का विश्लेषण मद-मत्सर के रूप में किया जाता है ।

संसार में बाहरी शत्रु तो कितने ही हैं । अपराधी विद्वेषी, ठग, पाखंडी चित्र-विचित्र जाल बिछाये रहते हैं । मित्र बनकर शत्रु जैसे विश्वासघाती व्यवहार करने वालों की बाढ़ सी आई हुई है । इनके जाल में फँसकर मनुष्य बहेलिये, चिड़ीमारों, मछलीमारों द्वारा सताये गये जीवों की तरह दुसह्य दुःख सहता है । शारीरिक रोग असंयमी स्वभाव के कारण आये दिन बने ही रहते हैं । आर्थिक अभावों का ठिकाना नहीं । औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाया जाय और उपार्जन के लिये जी तोड़ परिश्रम किया जाय तो अभावों का कष्ट सहने का कोई कारण नहीं, पर आय और व्यय का सन्तुलन न बिठा पाने पर अधिक आजीविका होने पर भी सदा ऋणी, दरिद्र एवं व्यथित बने रहते हैं । मकड़ी की तरह यह अपने बुने जाल में स्वयं ही फँसना है या समझा यह जाता है कि दुर्भाग्य ने बेतरह जकड़ रखा है और प्रतिकूल परिस्थितियों में रहना पड़ रहा है ।

भव-बंधनों में अनकों परिस्थितिजन्य हैं । यों प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनगढ़ मनः स्थिति की ही देन होती हैं अन्यथा सृष्टि के सभी प्राणी सुखपूर्वक जीते हैं । पेड़ों में चिड़ियाँ, बिलों में दीमक, जंगलों में हिरन कुदकते-फुदकते प्रसन्नता का जीवन जीते हैं । जलाशय में मछलियाँ कल्लोल करती हैं । एक मनुष्य ही ऐसा है, जो उत्कृष्ट शरीर संरचना और विशिष्ट बुद्धिमत्ता के होते हुए भी हर घड़ी चिन्तित, उद्विग्न, शंका-शंकित, भयभीत आवेश ग्रस्त रहता है । इसका कारण न तो संसार की परिस्थितियाँ हैं और न प्रतिकूलताओं की भरमार । केवल अपनी ही मनः स्थिति अस्त-व्यस्त अनगढ़ होने से विचारणा भावना आशंका अभिलिप्सा का स्वरूप विकृत हो जाता है । फलस्वरूप पीला चश्मा पहन लेने पर सभी वस्तुएँ पीली दीख पड़ने की तरह संसार में दुःख दारिद्र्य शोक संताप ही भरा दीखता है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यह षडरिपु हर अज्ञानी और अहंकारी व्यक्ति के पीछे लगे रहते हैं और तरह-तरह के त्रास देते रहते हैं । यही भव बंधन है जो कुसंस्कारों के रूपों में स्वभाव का अंग बन जाते हैं और जन्म-जन्मातरों तक साथ चलते एवं त्रास देते हैं । इन्हें ही भव बंधन कहते हैं, इन्हीं से छुटकारा पाना मोक्ष है । ✻

बंगाल के खुदीराम बोस क्रान्तिकारी आन्दोलन में पकड़े गये । तब वे मात्र १४ वर्ष के थे । उन्हें फाँसी की सजा हुई ।

खुदीराम उस स्थिति में भी प्रसन्न रहते थे और पास होकर गुजरने वालों को भी हँसाते रहते थे । जेल के सभी अधिकारी उन्हें मन ही मन बहुत सम्मान देते और प्यार करते थे ।

जब फाँसी का एक दिन बाकी था । जेलर को कुछ सूझा उसने मीठे आम खुदीराम को दिये और कहा खा लेना । फिर कहाँ मिलेंगे । दूसरे दिन जेलर आया । पूछा आम खालिये ? बोस ने कहा मौत के डर से कुछ खा सकता ही नहीं । आम खाने की भी इच्छा नहीं हुई । वे रखे हैं कोने में ।

जेलर ने आम उठाये तो देखा कि उन्हें भीतर से चूसा जा चुका है । मात्र छिलके में ही हवा भर के उन्हें जैसा का वैसा बना दिया गया है ।

जेलर इस मखौल पर हँसते हँसते लोट पोट हो गया । खुदीराम भी हँसे और फाँसी का समय होते ही जल्लाद के साथ चले गये ।

बदलते समय के साथ अनुकूलन जरूरी

नाले का पानी स्थिर होता है, इसलिए कीचड़युक्त बदबूदार होता है, किन्तु नदी और झरने प्रवाहमान होते हैं , फलतः उनमें न गंदगी होती है, न कीचड़ वरन् अपने में स्वच्छ जल सँजोये रह कर प्यासों को शीतलता प्रदान करते रहते हैं । मनुष्य के साथ भी यही बात लागू होती है । आज वह जिस स्थिति से गुजर रहा है, उसमें एक प्रकार का ठहराव आ गया है और इस कारण उसमें स्वयं में असंतोष, समाज में अशान्ति और राष्ट्र में अराजकता का वातावरण पैदा हो गया है । जब तक उसके जीवन का पड़ाव गतिमान जलराशि का रूप धारण नहीं कर लेता और बदलते समय के अनुरूप स्वयं को, विचार को बदलना नहीं सीखता , तब तक उसका निज का जीवन एवं समाज घृणित स्थिति में ही बने रहेंगे । बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इससे अस्तित्व संबंधी खतरा भी पैदा हो सकता है ।

इसी बात को "दि टर्निंग प्वाइंट" के विद्वान लेखक फिटजार्फ क्रापा ने अपनी पुस्तक के "दि सिस्टम्स व्यू ऑफ लाइफ (पृ.२९४–२९५) अध्याय में भलीभाँति समझाया है । वे प्रस्तुत अध्याय में लिखते हैं कि शरीर विज्ञान का एक निश्चित नियम है । उसकी प्रत्येक प्रणाली में वातावरण के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तन होता रहता है और इस प्रकार वह अपने तंत्रों को परिस्थिति के अनुरूप अनुकूलित करते रह कर स्वयं को जीवित बनाये रहता है । इस प्रकार की अनुकूलन क्षमता न सिर्फ मनुष्य में होती है, वरन् पेड़–पौधों समेत हर प्रकार के प्राणियों में पायी जाती है । वे कहते हैं कि मनुष्य जैसे विकसित प्राणी में प्रतिकूलताओं से अपनी रक्षा के लिए तीन प्रकार के अनुकूलन की क्षमता होती है, जो लम्बी अवधि के वातावरण परिवर्तन के क्रम में क्रमिक रूप से क्रियाशील रहती है । उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति समुद्र तल से ऊँचे पहाड़ की चोटी पर जाता है, तो वह हाँफने लगता और हृदय धौंकनी की भाँति चलने लगता है, पर यह सभी परिवर्तन उत्क्रमणीय (रिवर्सिबल) होते हैं एवं वातावरण के बदलते ही व्यक्ति की स्थिति पूर्ववत् हो जाती है । यदि व्यक्ति उसी दिन नीचे आ जाय, तो वह पुनः सामान्य हो जाता है । इस प्रकार का अनुकूलन दबाव (स्ट्रेस) का एक भाग है । यह दबाव जन्तु के किसी एक अथवा अनेक प्रणालियों में खिंचाव पैदा करता है, जिसका मान अधिकतम होता है । परिणाम स्वरूप समग्र तंत्र में यह स्थिति पैदा हो जाती है, जिससे वह अन्य किसी दबाव (स्ट्रेस) के प्रति अनुकूलन क्षमता खो देता है । उदाहरण के लिए ऊँचे पहाड़ की चोटी पर स्थित व्यक्ति वहाँ पर बनी किसी सीढ़ी पर और ऊँचा चढ़ सकने में सक्षम न हो सकेगा। इस स्थिति में, चूँकि शरीर का एक तंत्र दूसरे से जुड़ा होता है, अतः शरीर की यह अक्षमता पूरे शरीर तंत्र में प्रसारित होकर समग्र शरीर की लोचकता अथवा अनुकूलन शक्ति को समाप्त कर देगी ।

यहाँ यदि परिवर्तित वातावरण लम्बे समय तक बना रहता है, तो उसे उस वातावरण में जीवित रहने के लिए पुनः अनुकूलन की आवश्यकता पड़ेगी और व्यक्ति पुनः अनुकूलन की एक अन्य प्रक्रिया से गुजरेगा । इस प्रक्रिया के दौरान शरीर तंत्र की फिजियोलॉजी में विभिन्न प्रकार के जटिल परिवर्तन होने आरंभ होते हैं , ताकि वह अपने लचीलेपन को कायम रखते हुए वातावरण के प्रभाव को सहन करने की क्षमता बनाये रख सके । इस प्रकार ऊँची चोटी पर व्यक्ति कुछ दिन पश्चात् बिना किसी कठिनाई के सामान्य ढंग से साँस लेने की स्थिति में आ जाता है ।

यदि प्राणियों में अनुकूलन की यह क्षमता न हो तो शायद वे अपने को जीवित न रख सकें । ऐसे ही अनुकूलन क्षमता बदलते सामाजिक परिवेश में स्वयं को जीवित–जीवन्त बनाये रखने के लिए मनुष्य को भी अभीष्ट होती है । यदि परिवेश के अनुरूप परिवर्तन वह न कर सके, तो उसका जीवित रह पाना संभव न हो सकेगा ।

इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए जॉन रसेल अपनी पुस्तक "एडाप्टिव नेचर ऑफ मैन एण्ड एनिमल" में लिखते हैं कि इसे भगवान की महती कृपा ही समझना चाहिए कि उसने सभी प्राणियों में एक ऐसी विशिष्ट क्षमता का समावेश किया है, जिसके अन्तर्गत

वह किसी भी वातावरण में स्वयं को उसके अनुरूप ढाल कर जिन्दा रह सकता है, चाहे वे अतिशीत युक्त ध्रुवीय प्रदेश हों, अथवा विषुवत् रेखा के उष्ण क्षेत्र। दोनों क्षेत्रों में कुछ दिन के निवास के बाद उनका शरीर-तंत्र स्वयं को वहाँ रहने योग्य बना लेता है। यह तो शरीर-प्रणाली की अपनी विशेषता है, जो अपने ढंग से अपने को परिस्थितियों के अनुरूप विकसित कर लेता है, किन्तु रसेल के मत से मानवी अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सिर्फ शरीर-प्रणाली के अनुकूलन मात्र से ही काम चलने वाला नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि जहाँ इतने से ही काम चल जाय, वहाँ तो ठीक है, पर जहाँ आगे और अनुकूलन की आवश्यकता हो, वहाँ दूसरे तंत्रों का भी अनुकूलन जरूरी है अन्यथा वह अस्तित्व संबंधी संकट पैदा कर सकता है।

शरीर अनुकूलन की तरह रसेल विचार-अनुकूलन को भी मानवी अस्तित्व का एक प्रमुख पक्ष मानते हैं और कहते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में इसी की सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि मनुष्य समय के अनुरूप अपने विचारों में परिवर्तन नहीं लाता, तो बदलते परिवेश में उसका अस्तित्व समाप्त होने की संभावना उसी प्रकार बढ़ जायेगी, जिस प्रकार शरीर-तंत्र के अनुकूलन के अभाव में किसी जीव का अस्तित्व संकट गहरा जाता है।

एफ एण्डर्सन अपनी पुस्तक "एडाप्टेशन" में लिखते हैं कि शरीर तंत्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह किसी भी प्रतिकूलता में जल्द ही अपने को उसके अनुकूल ढाल लेता है, पर मानवी विचार-तंत्र के साथ यह उतना ही कठिन है। मनुष्य अपने विचार को बदलते समय के साथ बदलना नहीं चाहता जबकि होना यह चाहिए कि उसमें रबर जैसा लचीलापन हो। आज जिस परिस्थिति के इर्द-गिर्द हमारा विचार-तंत्र क्रियाशील है, कल यदि वह परिस्थिति न रहे, तो उसमें भी तत्सम बदलाव लाया जा सके। इसी में मनुष्य की विशिष्टता और प्रगतिशीलता है, पर प्रायः ऐसा संभव हो नहीं पाता और यही उसकी प्रतिगामिता एवं यहाँ तक कि विनाश की जड़ है।

मूर्धन्य दार्शनिक प्रीतम ए. सारोकिन कहते हैं कि कभी प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँची रोमन सभ्यता सिर्फ इस कारण विनष्ट हो गई कि लोग समय के अनुरूप अपने विचारों और क्रियाकलापों में परिवर्तन नहीं ला सकें। वे लिखते हैं कि तत्कालीन शासक जूलियस सीजर ने वहाँ के अधिकांश लोगों को एक ऐसा कार्ड मुहैय्या कर रखा था, जिसके अन्तर्गत सामान्य लोगों को जो नहीं सोचना और करना चाहिए था, उसकी उन्हें पूरी-पूरी छूट थी। बस यही खुली उच्छृंखलता धीरे-धीरे व्रण से नासूर बनता गया और उनके विनाश का कारण बना।

रोगी वैद्य के पास गया। अपनी बीमारियों का विवरण बताया और उनसे छुटकारा पाने का चिकित्सा उपचार पूछा।

चिकित्सक दार्शनिक स्वभाव का था। उसे रोगी फँसाने का लालच नहीं था। वास्तविकता समझाने में ही उसे आनंद आता था।

चिकित्सक ने रोगी से कहा आधा इलाज मैं आपका करूँगा और आधा आपको अपने आप करना पड़ेगा।

मैं आपके रोग के अनुरूप दवा दूँगा। देख भाल करूँगा और उतार चढ़ाओं से निबटूँगा। यह मेरा काम है। आधे काम में आपको दो काम करने होंगे। आहार 'विहार' और 'रहन सहन' की विधि व्यवस्था का अनुशासनपूर्वक पालन करना। धैर्य और संयम अपनाये रहना।

आपका कार्य प्रधान है मेरा काम गौण। यदि आपने संयम बरता तो मेरा उपचार निश्चय ही सफल होकर रहेगा।

उस चिकित्सक से सभी रोगी यही शिक्षा प्राप्त करते और आने वालों में से अधिकांश अपनी बीमारियों से छुटकारा पाकर निरोग जीवन बिताते।

आज हम बिलकुल उन्हीं परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि हमारी हठधर्मिता सर्वनाश की निमित्त बन जाय। अतः समय रहते हमें चेत जाना चाहिए और पिछली घटनाओं से सीख लेकर समय के अनुरूप अपने विचारों को परिवर्तित करते रहकर अपना अस्तित्व बचाये रखने का प्रयास करना चाहिए। इसी में हमारी प्रगतिशीलता है और समझदारी भी। ✱

ഗ12।2-2

नया जन्म, नयी यात्रा

लोगों के आश्चर्य और कौतूहल का ठिकाना न रहा । परम अभिमाननी समझी जाने वाली नगर बधू वैशाली की गलियों में इस तरह अकेली चले किसके मन की सामर्थ्य थी जो यह सोच ले । सोचे भी कैसे ? जिससे मिलने के लिए स्वयं गणपति को भी प्रतीक्षा करनी पड़ जाय, जिसके एक दर्शन के लिए दूसरे राज्याध्यक्षों को महीनों का इन्तजार करना पड़े । वही आज इस तरह .....। किन्तु सब कुछ आखों के समक्ष था । अविश्वसनीय अकल्पनीय लगते हुए भी प्रत्यक्ष । वह शांत भाव से एकाकी चली जा रही थी । उसका प्रत्येक पग आश्चर्य के मस्तक पर पड़ती जा रही सिलवटों में एक की संख्या और बढ़ा देता ।

इस शांति के पीछे कितनी वेदना छुपी थी किसे मालूम ? बर्फ सी श्वेत भस्म के भीतर छुपे अँगारे की धधकती जलन को कौन महसूस करे ? उसके पहनावे में सिर्फ एक स्वच्छ साड़ी थी आभूषण के नाम पर केवल एक हाथ में एक सोने की चूड़ी और गले में केवल एक सूत्र का हेमहार । पैर भी उसके नंगे ही थे । ऐसा जान पड़ता था कि शोभा ने वैराग्य धारण किया है कान्ति ने व्रतोद्यापन किया है, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्सना धरती पर उतर आयी है । घरों की खिड़कियाँ खुल गई । सभी झाँकने लगे । बच्चों का एक दल पीछे-पीछे दौड़ पड़ा । वृद्धों ने कौतुक भरी नजर से एक दूसरे की ओर देखकर कहा बात क्या है ? फुसफुसाहटें हुईं । "सुना है अब पूजा-पाठ करने लगी है, कहते हैं किसी भिक्षु का प्रभाव है ।" अपने को समझदार समझने वालों में कुछ धीरे से बोले "देखते रहो, जनम की विलासिनी करम की मायाविनी गणिका अगर पूजा-पाठ करने लगे, तो मानना होगा कि बबूल में भी कमल के फूल खिलते हैं। पनाले में भी सुगंधि फूटती है सर्पिणी भी पुजारिण बन सकती है ।"

धीमे स्वरों में हो रही इस वार्ता के कुछ शब्द उसके कानों में पड़े बिना न रहे शब्द सिर्फ आड़े तिरछे अक्षरों का समूह भर तो नहीं और न ध्वनि उत्पादक कण्ठ सामर्थ्य । यह तो भाव की अभिव्यक्ति है सम्प्रेषण की समर्थ विधा । इसमें समाई तीक्ष्णता कोमलता, कटुता मधुरता की अनुभूति हुए बिना नहीं रहती । सुनकर उसे लगा किसी ने उसके अस्तित्व पर ढेरों अंगारे उछाल दिए हों । किसने ? विकट प्रश्न चिन्ह उसके चिन्तन की राह पर तन कर खड़ा हो गया था । उत्पत्ति से लेकर वर्तमान पल तक अनेक घटना-क्रम कुम्हार के चाक की तरह घूम गए । छलक पड़े विषाद को पीने की कोशिश में उसने होंठों का एक सिरा दाँतों से दबाया ।

मनुष्य और समाज प्रशिक्षु और पाठशाला-प्रशिक्षक के रूप में समझदार कहे-सुने समझे जाने वाले लोग । बड़ा जटिल है इस त्रिवर्गीय समीकरण का गणित लेकिन उतना ही सहज भी । मनुष्य सुगढ़-अनगढ़ कैसा भी हो, वह अपने विकास की अगली कक्षा में प्रवेश पाने के लिए इस पाठशाला में आता है और यदि पाठशाला ही टूट-फूटकर तहस-नहस हो गई हो, तब दोषी कौन ? ये समझदार-लगभग चबाते हुए उसने ये शब्द कहे, विरक्ति पूर्वक होंठों को सिकोड़ा ।

जन्मतः क्या अन्तर था उसमें और औरों में । वह बालिका थी, अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही रूपवान और गुणवान । किसने बनाया उसे हेय, किसने डाला उसे कलुषित मार्ग पर ? प्रश्न के उत्तर में अनेकों चेहरे चमके । नगर बधू के चुनाव के समय का सभागार आखों के सामने घूम गया । पुरोहित, शासक, व्यापारी विचारक वे सभी जो समाज के व्यवस्थापक होने का दम्भ करते हैं । यदि व्यवस्थापक स्वयं अव्यवस्था के पक्षधर हो जाएँ । व्यवस्था के नाम पर उन रीतियों मान्यताओं के पोषक बन जायँ जो मानव जाति के पैरों पर कुल्हाड़े चलाती है । तब भी क्या ये व्यवस्थापक हैं ?

मन ही मन वह हँसी पर एक ही पल में सँभल गई । राजोद्यान के बहिद्वार पर आकर वह ठिठक गई । विचारों की नाव में बैठी कब कैसे इतनी जल्दी आ पहुँची , पता ही न चला । उसके रुकने से लगा जैसे स्रोतस्विनी के सामने अचानक शिला खण्ड आ गया हो । चकित मृगशावक की भाँति भीत नयनों से चारों ओर देखा । क्या करे, क्या न करे ? सोच नहीं पा रही थी । भिक्षु संघ के अधिष्ठाता और नगर बधू इन दो किनारों के बीच की दूरी का अनुमान लगाना सहज है । किन्तु तथागत की करुणा का सबल

सेतु भी सामने था ।

तभी उसकी दृष्टि बाहर निकल रहे एक भिक्षु पर पड़ी । ये आनन्द थे अपने शास्ता की करुणा के सर्वोत्तम अधिकारी । उसने विनम्रता से कहा "मैं महात्मा बुद्ध के दर्शनों के लिए आयी हूँ ।" इतना कहना पर्याप्त था उनके लिये । वे उल्टे पैरों लौट पड़े । बुद्ध को सन्देश दिया । नगर बधू का इस तरह आना सभी के लिए आश्चर्यजनक था । अनेकों दृष्टियों में आश्चर्य को देखकर तथागत मुस्कराए । तब आम्रपाली पहुँच चुकी थी ।

"आओ देवि !" उन्होंने खड़े होकर स्वागत किया । उनकी सम्मोहक दृष्टि में वात्सल्य था । आखों से झर रही करुणा से आम्रपाली का समूचा अस्तित्व भीग गया । "प्रभु"! उसकी आखों से अश्रुधारा फूट पड़ी । फफक कर बोली "मैं अपने पाप जीवन से ऊब गई हूँ । इस नरक से मेरा कभी उद्धार भी होगा ।" उसने दीर्घ निश्वास लिया ।

"न न पाप जीवन और नरक की बात मत सोचो । तुम्हारे भीतर देवता का निवास है । तुम जिस पाप जीवन की बात कर रही हो वह मनुष्य की बनाई हुई विकृत समाज–व्यवस्था की देन है । चिन्ता न करो देवि, इससे उद्धार हो सकता है । तुम्हारा देवता तुम्हारे भीतर बैठा हुआ अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है । कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नहीं करती । वह अन्तर्यामी देवता ही उद्धार कर सकता है ।"

आम्रपाली आखें फाड़े उनकी ओर देखती रह गई । उसे इन बातों का अर्थ स्पष्ट नहीं हो रहा था । पर बिना अर्थ समझे भी जैसे मधुर संगीत चित्त को अभिभूत कर लेता है कुछ इसी तरह की अनुभूति उसे हुई ।

तथागत उसे उत्साहित करते हुए बोले "देवता न बड़ा होता है छोटा न शक्तिशाली होता है न अशक्त । वह उतना ही बड़ा होता है जितना बड़ा उसे उपासक बनाना चाहता है । तुम्हारा देवता भी तुम्हारे मनकी विशालता और उज्ज्वलता के अनुपात में विशाल और उज्ज्वल होगा । लोगों के कथन की चिन्ता छोड़ो । अपने अन्तर्यामी को प्रमाण मानो ।"

उसे यह नया सुनने को मिला । बाल मृगी जिस तरह बरसते मेघ के रिमझिम संगीत को सुनती है । उसी तरह वह सुनती रही चकित उल्लसित, उत्सुक । आश्चर्य हो रहा था उसे, उसके भीतर भी देवता है चिर उपेक्षित चिर पिपासित चिर अपूजित ! उसकी बड़ी–बड़ी आखें धरती की ओर जो झुकीं सो मानो चिपक ही गयीं । वह दाहिने पैर के नाखून से धरती कुरेदती खड़ी रही ! नाना भाव–तरंगों के आघात–प्रत्याघात से वह जड़ प्रतिमा की भाँति निश्चेष्ट हो गई ।

कुछ पलों के बाद वह प्रकृतिस्थ हुई । उसे स्वयं नवीन बल का अनुभव हो रहा था । ऐसा लगने लगा लम्बे समय से सोये देवता ने अँगड़ाई ले जीवन व्यवस्था सँभाल ली हो । "प्रभु—मैं " अटकते हुए कहे गए इन शब्दों में छुपे भाव को पहचानते हुए तथागत बोले "देवि ! जाग्रत जन ही समाज को नई व्यवस्था देते हैं । जिस कलुषित अस्त व्यस्तता ने तुम और तुम्हारे जैसे अनेकानेक जीवनों को नष्ट किया है उसे बदल डालना नई प्रणाली की रचना करना ही इस धर्म चक्र प्रवर्तन का उद्देश्य है । जाग्रत जीवन की अजस्र शक्तियों का नियोजन यहीं करो ।"

सामर्थ्य होते हुए भी जो परमार्थ कार्यों से जी चुराता है, वह निन्दनीय है । उससे भी अधिक निन्दनीय वह है, जो, दूसरों को भी अपनी जैसी कृपणता अपनाने का परामर्श देता है ।

यही तो राह में सोचती हुई आयी थी । भावों को पढ़ने में कुशल बुद्ध ने समाधान सुझा दिया । जीवन में जाग्रति आये इसकी एक ही पहचान है, एक ही कसौटी, व्यक्तित्व की समस्त सामर्थ्य भागवत प्रयोजन को पूरा करने के लिए उमड़े बिना नहीं रहती । आम्रपाली इस नूतन तथ्य की अनुभूति कर रही थी । अगला पल अडिग निश्चय का पल था। धर्म चक्र के प्रवर्तक के चरणों में सर्व समर्पण का तात्पर्य खोना नहीं मिटना नहीं । खोती और मिटती तो तुच्छता और क्षुद्रता है । समर्पण तो महानतम और सर्वस्व की प्राप्ति का उत्सव है और वह उत्सव मना रही थी । अपने अन्दर देवता की खोज पूरी हुई । नया जन्म, नया जीवन, नयी यात्रा । एक अभिनव कायाकल्प कभी की नगर बधू अब नई व्यवस्था की कुशल रचनाकार बन गई– परिवर्तन का उल्लास भरा पर्व, नियामक शक्ति वर्तमान क्षणों में भी संचालित कर रही है । इन क्षणों में ऐसे ही कायाकल्प की अनुभूतियाँ अपेक्षाकृत कहीं प्रखर रूप से अनुभव की जा सकती हैं । ✱

आत्मोत्कर्ष के लिए किया गया संतुलित पुरुषार्थ

गाड़ी दो पहियों के सहारे चलती है उनमें से एक गड़बड़ा जाय तो समझना चाहिए कि गतिरोध खड़ा हो गया और आगे चल सकने की बात समाप्त हुई। जीवन के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात है। शरीर और प्राण इस जीवन रथ के दो साझीदार हैं जब तक दोनों भागीदार अपना-अपना कर्तव्य पालन करते हैं और एक दूसरे के हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। जब एक भागीदार अनुचित लाभ उठाने लगता है और दूसरे को अभावग्रस्त स्थिति में रहना पड़ता है, पल्ले कुछ नहीं पड़ता और घाटा जेब से चुकाना पड़ता है तो समझना चाहिए कि अनीति का समावेश हो चला और यह व्यवसाय देर तक नफे में न चल सकेगा।

हम शरीरगत सुविधाओं के निमित्त बहुत कुछ करते हैं। बहुत कुछ क्यों यों कहना चाहिए कि सब कुछ करते हैं। प्रातः उठने से लेकर रात को सोते तक का समय पूरी तरह शरीरचर्या में ही लग जाता है। उठते ही नित्यकर्म, जलपान,सज्जा, श्रृंगार, पेट भरने के लिए आजीविका उपार्जन। शाम को थके माँदे लौटना, सायंकाल का नित्यकर्म, हँसी विनोद। इसके बाद गहरी नींद आ जाती है और दूसरे दिन सबेरे ही आँख खुलती है। यह क्रम थोड़ी उलट-पुलट के साथ चलता रहता है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त तक की अवधि इसी प्रकार पूरी हो जाती है।

यह समस्त प्रयास तो सुविधा साधन शरीर के लिए ही जुटाता रहा न? दूसरे भागीदार आत्मा से तो नहीं पूछा गया कि तुम्हारी भी कोई आवश्यकता है क्या? तुम्हारा हित भी ध्यान में रखे जाने योग्य है क्या? यदि है तो उस पक्ष में कुछ किया जा रहा है? क्या दूसरे साझीदार के हितों का भी संरक्षण मिल रहा है? यह प्रश्न प्रतिदिन अपने आप से पूछे जाने चाहिए और देखना चाहिए कि एक साझीदार सब कुछ हड़प तो नहीं रहा है और दूसरे का सब कुछ अपहरण तो नहीं हो रहा है?

वस्तुतः आत्मा की भी कुछ आवश्यकताएँ हैं, उसके भी कुछ स्वार्थ हैं। यह शरीर उसे ही अपना लक्ष्य पूरा करने में सहायता करने के लिए मिला है। उसे उपकरण, औजार, साधन, वाहन की तरह उपयोग करने के लिए दिया गया है, ताकि इस सुर दुर्लभ अलभ्य अवसर का सही उपयोग हो सकें।

कहते हैं-जीव नीची योनियों से भ्रमण करते हुए मनुष्य स्तर तक पहुँचा है और इसके उपयोग की पात्रता सिद्ध न कर पाने पर अयोग्य ठहराया जाता है और कुपात्र होने पर फिर उसी कुचक्र में घूमने के लिए लम्बी अवधि तक का दंड दुर्भाग्य वहन करना पड़ता है।

परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्र ऊँची कक्षा में चढ़ते हैं। अच्छे नम्बर लाने वाले छात्रवृत्ति पाते हैं, किन्तु जो पिछड़ जाते हैं, चूक जाते हैं, परीक्षा के दिनों प्रमाद बरतते हैं उन्हें पीछे पश्चाताप ही करना पड़ता है। जो समय चला गया, वह पीछे लौटता कहाँ है? हारा हुआ जुआरी जिस पर भीतर ही भीतर खीजता और स्वजन सम्बन्धियों की भर्त्सना सहता है। उसी प्रकार उन्हें भी पछताना होता है जो जीवन सम्पदा को उन कार्यों में गँवा देते हैं जिनका वस्तुतः कोई महत्व, कोई मूल्य आत्मा को भी लाभ मिलने के लिए नहीं है।

शरीर वाहन है उसके घाट पानी का प्रबंध तो होना चाहिए, पर वह कार्य इतना न फैला दिया जाय कि मालिक को घास खोदने, पानी खींचने, लीद बटोरने, सज्जा सजाने जैसे कार्यों में ही निरन्तर लगा रहना पड़े, यह याद भी न रहे कि इस पर बैठकर कहीं लम्बा सफर करना और लक्ष्य तक पहुँचना भी है क्या?

मनुष्य जीवन एक बहुमूल्य सम्पदा है। वह धरोहर की तरह इसलिए मिला है कि इसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करके दिखाया जाय। जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उन्हें महामानव,ऋषि, देवात्मा, अवतार आदि बनने का उपहार मिलता है, वे ही स्वर्ग और भक्ति का आनंद लेते हैं। जो उपेक्षा बरतते और फेल होते हैं उन्हें अयोग्यता के फलस्वरूप यही दंड मिलता है कि फिर उसी छोटी कक्षा में रहें, फिर वही पाठ याद करें। चौरासी लाख योनियों का भ्रमण दंड स्वरूप भी है-

और इसलिए भी उन पाठों को याद करे जो मनुष्य जीवन की परीक्षा घड़ी आने से पूर्व ही पूरे कर लिए जाने चाहिये थे ।

आत्मा को जब शरीर सौंपा गया है, तो उसे दो लक्ष्य पूरे करने के लिए कहा गया है ।एक आत्म कल्याण जिसका अर्थ होता है "संचित कुसंस्कारों का परिशोधन ।" दूसरा लक्ष्य है लोक कल्याण जिसका तात्पर्य है "इस विराट् ब्रह्म. विशाल विश्व को सुन्दर समुन्नत बनाना ।" यही दो प्रश्न पत्र हैं जो मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए मनुष्य को पूरे करने होते हैं ।

इनकी उपेक्षा करके कोई और सीधी पगडंडी ढूँढ़ना चाहे तो उसे कँटीली झाड़ियों में ही भटकना पड़ेगा । पूजा के बहाने भगवान को फुसलाने की चेष्टा सर्वथा निरर्थक है । उससे किसी प्रकार के व्यक्तिगत पक्षपात की आशा करना व्यर्थ है । वह अपने को निष्पक्ष न्यायकारी पद से नीचे उतरने को किसी भी मूल्य पर तैयार नहीं हो सकता है । भले ही दिन भर भजन किया और रात भर कीर्तन गाया जाय । खुशामद, चापलूसी और रिश्वत के सहारे उल्लू सीधा करने की प्रथा अपनी इसी गंदी दुनिया में ही है । भगवान के दरबार में इनका प्रवेश नहीं हो सकता । वहाँ खरे खोटे की एक ही कसौटी है कि सौंपे गये दायित्वों को ठीक तरह पूरा किया गया या नहीं । सौंपी गई अमानत का सदुपयोग हुआ या नहीं ।

शरीर यात्रा इतनी कठिन नहीं है कि जिसके लिए सारा समय और सारा मनोयोग लगा दिया जाय । यों वाहन और मालिक के दर्जे में बहुत अन्तर है । वाहन मालिक के लिए है, न कि मालिक वाहन के लिए । शरीर यात्रा इतनी कठिन नहीं है जिसके लिए समस्त क्षमताओं को उसी हेतु नियोजित किये रखा जाय । थोड़ी समझदारी का उपयोग करने पर ऐसी विधि–व्यवस्था भली प्रकार बन सकती है जिसमें शरीर का पोषण करते हुए भी आत्मा के स्वार्थ साधनों हेतु पर्याप्त समय मिल सके ।

आठ घंटा अर्थ उपार्जन के लिए, सात घंटा सोने के लिए, पाँच घंटा नित्यकर्म तथा अन्यान्य कामों के लिए लगाने पर किसी भी विचारशील की अभावग्रस्त होते हुए भी जीवनचर्या भली प्रकार चल सकती है और वह शेष चार घंटे बिना किसी कठिनाई के उन कार्यों के लिए बचाये जा सकते हैं जो आत्मोत्कर्ष के लिए नितान्त आवश्यक हैं और जिसके बिना वह लक्ष्य हस्तगत नहीं हो सकता जिसके लिए यह शरीर मिला है ।

इन दैनन्दिन कार्यक्रमों को बनाने में विज्ञजनों को तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती । उपासना कृत्य चलते–फिरते भी हो सकता है या अधिक से अधिक एक घंटा उसमें सुनियोजित ढंग से लगाने में उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है । शेष समय को सेवाधर्म के निर्वाह में लगाया जा सकता है ।

एक गृहस्थ ने परिवार को छोड़ कर विरक्त का बाना धारण किया । परिवार को उनके भाग्य पर छोड़ दिया । करम सिंह से कर्मानंद बन गये ।

उनने दूर दूर के तीर्थ यात्राएँ कीं और साधुओं की मण्डलियों में सम्मिलित रहे । ज्ञान चर्चा सुनने में भी किसी से पीछे न रहे इतने पर भी विरक्त कर्म का क्रियाकलाप देखकर उन्हें तनिक भी संतोष न हुआ । भिक्षा माँग कर पेट भरना और भजन के नाम पर चित्र विचित्र नाटक रचते रहना उन्हें तनिक भी न सुहाया । वे सोचने लगे कि इससे अच्छी सेवा और भक्ति तो घर रह कर भी हो सकती है ।

वे घर लौट गये । भगवा वस्त्र छोड़ कर सादा कपड़े पहनने लगे । खेत पर कुटी बनाली और वहाँ एक प्रकार का सत्संग विद्यालय बना दिया। दिन भर सभी वर्ग के लोग वहाँ पहुँचते और अपने अपने योग्य आवश्यक समाधान पर प्रकाश प्राप्त करते । गृहस्थ रहने पर भी स्वामी जी ही कहलाते रहे । उनने समीपवर्ती क्षेत्र में जनसम्पर्क बनाया । अनेकों रचनात्मक प्रवृत्तियों को जन्म दिया । अब वे सच्चे अर्थों में कर्मानंद थे । पूर्व परिचित लोग उन्हें करम सिंह ही कहते थे ।

जहाँ तक पुण्य परमार्थ के सम्बन्ध में , वहाँ जनमानस का परिष्कार ही एक ऐसा है जिसे सर्वोपरि महत्व का समझा जा सकता है ।जहाँ यह बन पड़ेगा वहाँ किसी को किसी प्रकार का अभाव या त्रास न सहना पड़ेगा । हमें अपनी जीवनचर्या इसी आधार पर बनाकर अपनी दूरदर्शी विवेकशीलता का परिचय देना चाहिए ।

*

अनुसंधान आत्मसत्ता का भी हो

पदार्थ सामान्यतया एक नियम व्यवस्था के अनुसार काम करते हैं। अणु-परमाणुओं से लेकर ब्रह्माण्ड के तारों, ग्रह-गोलकों, मण्डलों तक पर प्रकृति के कुछ नियम-अनुशासन नियंत्रण करते हैं और तदनुरूप ही सृष्टि का सारा क्रम चलता है। किन्तु चेतना का प्रकृति पर भी आधिपत्य है और वह अपने आकर्षण तथा दबाव से प्रकृति नियमों में भी हेर फेर कर सकती है। मानवी चेतन सत्ता में ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण अनन्त संभावनायें विद्यमान हैं। यदि उन्हें खोजने, जगाने और विकसित करने का प्रयत्न किया जाय तो प्रकृति के वैज्ञानिक अनुसंधानों से अब तक जितना मिल सका है, उसकी तुलना में चेतना क्षेत्र की खोजबीन से सहस्रों गुना अधिक उपलब्धियाँ करतलगत की जा सकती हैं।

चेतनात्मक विकास परिष्कार के लिए ही साधना, उपासना एवं तप-तितिक्षा के विविध सोपानों का सृजन प्राचीन ऋषि-मनीषियों ने किया था और स्वयं अपनी कायिक प्रयोगशाला में अनेकानेक शक्तियों, क्षमताओं, दिव्यविभूतियों को उद्भूत किया था। पंच भौतिक काया तो माध्यम मात्र है। उसकी समस्त हलचलों के पीछे प्राणचेतना सक्रिय रहती है। उसके साथ छोड़ते ही शरीर निर्जीव निष्क्रिय हो जाता है और उसे ठिकाने लगाने का प्रबंध किया जाता है। निखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त समष्टिगत प्राण चेतना के लहलहाते महासागर में से आकर्षित अवधारित करके साधक अपनी प्राण ऊर्जा को विकसित करता हुआ क्रमशः प्रगति पथ पर बढ़ता जाता है। दूरदर्शन, दिव्य दर्शन, दूर श्रवण, आकाश गमन, परकाया प्रवेश जैसी अतीन्द्रिय क्षमताएँ पराशक्तियाँ प्राणोत्थान की देन हैं। इस प्रकार की चेतनात्मक विलक्षणताएँ कई बार मनुष्य में अनायास ही उभर कर ऊपर आती देखी गई हैं, उन्हें जगाकर भी प्रकट एवं परिपक्व किया जा सकता है।

सुविख्यात सन्त ऑगस्टाइन ने 'जीवन स्मृति' नामक अपनी पुस्तक में इस तरह की कितनी ही घटनाओं का उल्लेख किया है जो यह सिद्ध करती हैं कि मानवी अन्तराल विभूतियों का भाण्डागार है। सेण्ट मणिका नामक सिद्ध साधिका का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि वह प्रार्थना के समय लगभग तीन फुट ऊपर आकाश में अवस्थित हो जाती थी। ऐसा लगता था कि उसके शरीर पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं है। उसका शरीर वायु में तैरता दिखाई पड़ता था।

सेण्ट फ्रांसिस-पाओला रात्रि के समय प्रार्थना करते हुए आकाश में उठ जाते थे। एक बार नेपल्स के राजा ने उनको आमंत्रित किया। जिस कक्ष में निवास की व्यवस्था थी, उसके दरवाजे में एक छिद्र था। रात्रि को नरेश ने देखा कि संत फ्रांसिस प्रार्थना कर रहे हैं तथा एक विशाल प्रकाशपुंज उनको घेरे हुए है। मेज से कई फुट ऊँचा उनका शरीर शून्य में बिना किसी सहारे के अवस्थित था। एक अन्य घटना पाँचवी शताब्दी की है। स्पेन की सेण्ट टेरेसा, जिसकी तुलना भारतीय मीरा से की जाती है, उनके विषय में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। स्थानीय विशप आलपेरेस डे मोनडोसा एक बार उनसे मिलने गये वे यह देखर आश्चर्यचकित रह गये कि टेरेसा का शरीर जंगले से ऊपर शून्य में स्थित है।

विशप सेण्ट आर. के विषय में भी उल्लेख मिलता है कि गिरिजाघर बन्द हो जाने के बाद भी वे किसी अलौकिक शक्ति द्वारा पहरेदारों की उपस्थिति में भी भीतर पहुँच जाते तथा सारी रात जागकर प्रार्थना करते रहते। प्रार्थना की अवधि में सम्पूर्ण गिरिजाघर एक दिव्य आलोक से आलोकित रहता था। इसी तरह प्रख्यात दार्शनिक जाम ब्लिपास साधना के समय पृथ्वी से दस फुट ऊपर उठ जाते थे। उस समय उनके शरीर एवं वस्त्रों से सुनहरी चमकीली ज्योति निकलती दिखाई देती थी। उनका शरीर वायु में विचरण करता रहता था। टियाना निवासी योगी एपोलोनियस में भी आकाशगमन की शक्ति थी।

भारतीय योगियों में तो इस प्रकार की अलौकिक घटनाओं के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। शंकराचार्य द्वारा एक राजा के मृत शरीर में परकाया प्रवेश की घटना विख्यात है। उनको तथा मुनि गोरखनाथ को आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त थी। महर्षि दयानन्द

सरस्वती को कितनी बार नदी के ऊपर आसन लगाकर ध्यान करते हुए लोगों ने देखा था । स्वामी रामतीर्थ एवं रामकृष्ण परमहंस की घटनाएँ सर्व विदित हैं । काठियाबाबा, विशुद्धानन्द जैसे योगियों के जीवन वृत्तान्त में भी इस प्रकार की घटनाएँ देखने को मिलती हैं । पं. गोपीनाथ कविराज ने स्वसम्पादित कृति-"विशुद्धवाणी" में स्वामी विशुद्धानन्द की असाधारण सिद्धियों एवं सूर्य विज्ञान का सविस्तार वर्णन किया है । आकाशगमन की सिद्धियों का वर्णन करते हुए उनने लिखा है कि आवश्यकता पड़ने पर वे वाराणासी स्थित अपने आश्रम से हिमालय की दुर्गम पर्वत उपत्यिकाओं के मध्य बसे ज्ञानगंज योगाश्रम में आकाश मार्ग से हवा में उड़ते हुए पहुँच जाया करते थे ।

काशी के महान संत तैलंग स्वामी योग विभूतियों के सम्राट थे । रामकृष्ण परमहंस ने अपने काशी प्रवास के समय उनसे मिलने के पश्चात कहा था कि वे साक्षात् विश्वेश्वर हैं । विश्वनाथ भगवान शिव की समस्त विभूतियाँ उनके शरीर का आश्रय ग्रहण कर प्रकट हो चुकी हैं । उनके लिये कुछ भी असंभव नहीं था इसी तरह का वर्णन ताप्ती तट पर तपस्यारत दीर्घायुष्य योगी चांग देव के सम्बन्ध में भी ग्रन्थों में मिलता है । अपनी आत्मचेतना का विकास करके उनने हिंस्र प्राणियों तक को बशवर्ती बना लिया था । इसका उन्हें गर्व भी था , एक बार जब उन्हें महाराष्ट्र के सन्त ज्ञानेश्वर की योग क्षमताओं एवं ख्याति का पता चला तो वे सिंह पर सवार होकर उनसे मिलने चल दिये । अभी वह आलिंदी के समीप पहुँचे ही थे कि ज्ञानेश्वर को उनके उद्देश्य का पता चल गया । उनने उस विचित्र योगी के गर्व को दूर करना ही उचित समझा । प्राकृतिक शक्तियों एवं जड़ पदार्थों पर उनका पूर्ण आधिपत्य तो था ही अतः जिस दीवार पर बैठकर अपने भाई और बहिन के साथ ज्ञान चर्चा में संलग्न थे; उसे ही चलने का आदेश दे दिया । सम्पूर्ण दीवार सहित तीनों संतों को अपनी ओर आते देख चांगदेव का अहं विगलित हो गया और वे उनके चरणों में नतमस्तक हो गये ।

मनीषी दाराशिकोह ने सुप्रसिद्ध सूफी संतों औलियों के जीवन वृतान्त में मियाँ मीर का उल्लेख किया है । इसके अध्ययन से पता चलता है उनमें दिव्य क्षमताएँ विकसित थीं । वे आवश्यकतानुसार कभी-कभी लाहौर से आकाश मार्ग द्वारा 'हिजाद' जाते थे । रात्रि व्यतीत करके पुनः सूर्योदय के पूर्व लाहौर वापस लौट आते थे । शेख अब्दुल कादिर नामक सिद्ध साधक उपासना करते एवं व्याख्यान देते समय भूमि तल से ऊपर शून्य में उठ जाते थे । उपस्थित हजारों व्यक्तियों ने इस घटना को देखा था ।

पाश्चात्य जगत में इंग्लैण्ड निवासी डेनियल डगलस होम की गणना चमत्कारी व्यक्तियों में प्रमुख रूप से की जाती है । उनकी क्षमताओं में अधिकांश करिश्मे-उनका प्रकाश से घिरे रहना, इशारे मात्र से कमरे की वस्तुओं, कुर्सी-मेज आदि का अपने आप हवा में उड़ने लगना, वाद्य यंत्रों का बजने लगना, छत से सुगंधित पुष्पों की बौछार का होने लगना एवं स्वयं का हवा में ऊपर उठने और तैरने लगना आदि सम्मिलित थे । हार्टफोर्ड के मूर्धन्य संपादक एफ. एल. बर एवं वार्ड चेनी ने होम की क्षमताओं को जाँचने परखने पर सही पाया था । न्यूयार्क के सुप्रसिद्ध-वैज्ञानिकों का एक प्रतिनिधि-

> *बेलजियम की रानी ने महान वैज्ञानिक आइंस्टीन को आमंत्रित किया । वे पहुँचे । रेल पर स्वागत के लिए उच्च अफसरों की मंडली मौजूद थी । पर वे इतने सादे कपड़ों में थे कि कोई उन्हें पहचान न सका ।*
>
> *स्वागत के लिए भेजे गये लोग वापस लौट आये । पीछे अपना बिस्तर सिर पर लादे आइंस्टीन स्वयं राजमहल पहुँचे । उनकी सादगी और सज्जनता की सर्वत्र भूरिभूरि प्रशंसा हुई ।*

मंडल जिनमें डा. जार्जबुश, होम्योचिकित्सक डा. जॉन ग्रे, रसायन शास्त्री डा. राबर्ट हेयर तथा न्यूयार्क उच्चतम् न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश जॉन डब्ल्यू. एडमोंस सम्मिलित थे, ने भी उसकी पराशक्तियों को देखा और गंभीरतापूर्वक परखा था । तदुपरान्त सबने एक मत से स्वीकार किया था कि मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमता असीम और अप्रत्याशित है । वह अपनी चेतन सत्ता का विकास करके अन्य असंख्यों व्यक्तियों की जीवन दिशा को बदल सकता है ।

प्रकृति पदार्थमयी है, इसलिए उसका अनुशासन पदार्थ पर तो पूर्णतया लागू होता है, किन्तु मनुष्य चेतना का धनी है । उसकी अपनी विशेषता है और ऐसी है जो प्रकृति को भी अपना अनुयायी बना सकती है । अनुसन्धान के लिए यदि आत्म सत्ता के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सके तो मनुष्य सच्चे अर्थों में सिद्धियों और चमत्कारों का अधिपति हो सकता है । ☸

जीवन को सफल बनाने वाला व्यावहारिक अध्यात्म

सांसारिक सफलताओं में जितना सहायक मानसिक संतुलन होता है उतना संभवतः संसार का अन्य कोई साधन कदाचित ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

मानसिक आवेश या अवसाद दोनों ही ऐसे हैं जो कदाचित ही किसी की सूझबूझ को व्यवहार कुशल रहने देते हैं और उसे इस निष्कर्ष पर कदाचित ही पहुँचने देते हों कि वर्तमान क्षमताओं और परिस्थितियों का तालमेल बिठाते हुए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ।

मनुष्य के सामने परिस्थितियों की प्रतिकूलता से जूझने और अनुकूलता को बनाने के लिए अनेकों विकल्प रहते हैं । उनमें से कुछ अनाड़ीपन से भरे होते हैं और कुछ समझदारी के । इनमें से किसका चुनाव किया जाय इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ऐसी मनःस्थिति चाहिए जो हर पक्ष के गुण-दोष ढूँढ़ सके और जो सरल एवं सही है, उन्हें अपना सके । आवेशग्रस्तता ऐसा सुझाती है जो आक्रमक हो, आतुर हो । इसके विपरीत डरपोक व्यक्ति किसी प्रकार गाड़ी धकेलना और समय चुकाना चाहता है । ऐसा कुछ नहीं करना चाहता जिसमें झंझट दीख पड़े, जिसमें अतिरिक्त शक्ति लगानी पड़े । यह दोनों ही स्थितियाँ अतिवाद के दो सिरे हैं । इनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो दूरदर्शिता को सही रहने दे और ऐसा चुनाव करने दे जो प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण भी रखे और सफलता को समीप भी ला दे ।

संतुलित मन वाला ही सज्जनोचित विनम्र व्यवहार कर सकता है । उसी में वह विशेषता होती है जो मैत्री को बढ़ाने और कटुता को घटाने में सहायक सिद्ध हो सके । शिष्टाचार की सामान्य सी भूल भी दूसरों को अखर जाती है और वे उसे अशिष्टता, अवमानना मान बैठते हैं । फलतः मित्र को कम और विरोधी को वह उपेक्षा अप्रिय लगती है जो वस्तुतः कर्ता के मन में भी नहीं थी । मात्र मन की अस्त व्यस्त स्थिति में ही संयोगवश बन पड़ी थी ।

स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जिसके मित्र, शुभ चिन्तक, समर्थक, प्रशंसक अधिक होते हैं वह आगे बढ़ता और समीपता के निकट अपेक्षाकृत जल्दी पहुँचता है । जिसके निन्दक, विरोधी अधिक होते हैं, जिसे उपेक्षा, असहयोग का सामना करना पड़ता है, वह अपने सरल कामों में भी विलम्ब होते और अड़चन आते देखता है । सौजन्य ही वह कला है जो मित्र बढ़ाती और विरोधी घटाती है । सज्जनता किसी के ऊपर अहसान करना नहीं वरन् अपने ही व्यक्ति सन्मान तथा सहयोग का क्षेत्र विस्तृत करना है । इस बिना खर्च की विशिष्टता को अर्जित करने में एक ही प्रधान कठिनाई है, मस्तिष्क को असामान्य स्थिति में उबलता हुआ या गया गुजरा अनगढ़ स्तर का रखना ।

बुद्धिमत्ता की अनेकों परीक्षाएँ हैं । पर सबसे सरल और कारगर यह है कि अपने स्वभाव को उदार और सहनशील बना कर रखा जाय । यह तभी हो सकता है जब दूसरों की भूलों को सामान्य मानकर चला जाय और उसके पीछे दुर्भावना न ढूँढ़कर व्यवहार की भूल चूक मानकर चला जाय । साथ ही अपनी सज्जनता को किसी भी स्थिति में मर्यादा से बाहर न जाने दिया जाय । सज्जनता ऐसी विशेषता है जिसे किसी भी स्थिति में अपने स्थान पर अक्षुण्ण बनाये रखा जाय । वह अपने व्यक्तित्व के साथ इतनी घुली मिली होनी चाहिए जिसे कोई अनगढ़ व्यक्ति भी हाथ से छीन न सके ।

जिसको अपने कार्य व्यवहार में जन सम्पर्क साधना पड़ता है, उसे व्यंग, उपहास तिरस्कार की आदत छोड़ ही देनी चाहिए । इसके लिए शिष्टाचार की किसी पाठशाला में पढ़ने जाने की आवश्यकता नहीं है । मस्तिष्क को शान्त संतुलित बनाये रखने की विधा से यह सहज स्वभाव बन जाता है । जो अपने सेवक, स्वामी, मित्र, कुटुम्बी पड़ौसी आदि के प्रति अपनी ओर से शिष्टाचार बरतता रहता है उसके प्रति अन्यान्यों की उपेक्षा, अवमानना टिक नहीं सकती । फलतः वह अन्ततः नफे में ही रहता है ।

शान्त चित्त वाला व्यक्ति ही इस तथ्य पर पहुँच सकता है कि पूरा काम करना सही काम करना, समय पर काम करना कितना लाभदायक है । लापरवाही

गैर जिम्मेदारी की स्थिति में बेगार भुगत देने से समय बच सकता है , पर उसमें प्रतिष्ठा निश्चित रूप से चली जाती है , जिसे अप्रामाणिक, बेईमान समझ लिया जाता है, उससे दुबारा काम कराने की इच्छा नहीं होती फलतः उपेक्षितों जैसी स्थिति बन जाती है । यह निश्चित है कि एक बार किसी को खराब माल चपेक देने, ज्यादा पैसे ले लेने जैसी बेईमानी में सम्मिलित किये जा सकने लायक व्यक्तियों का सहकार स्थायी रूप से गुम जाता है । लोग मनोभावों को अपने तक ही सीमित नहीं रख पाते वरन् एक दूसरे से दूसरा तीसरे से कहता रहता है । इस प्रकार बात फैलती और प्रतिष्ठा गिरती जाती है । असफलता के प्रमुख कारणों में एक है ईमानदारी के दूरगामी सत्परिणामों को न समझना और जल्दी-जल्दी अधिक मात्रा में लाभ या यश कमा लेने के लिए आतुरता बरतना । यह अपनी स्थायी प्रतिष्ठा को गिराने और भविष्य में मिल सकने वाले लाभों की जड़ काट देने के समान है ।

जो अपने आप को प्रसन्न रख सकता है उसी से दूसरे भी प्रसन्न रह सकते हैं । मुसकान यह कहती है कि यह व्यक्ति अपनी स्थिति से संतुष्ट और अपने कामों में सफल है । साथ ही यह भी प्रकट होता है कि दूसरे के मिलन आगमन पर प्रसन्नता हुई है । यह सभी बातें ऐसी हैं जो आत्म विज्ञापन के अन्य सभी तरीकों की तुलना में अधिक सस्ती और अधिक कारगर हैं । चेहरे पर मुसकराहट का बनाये रहना एक अच्छा अभ्यास है जो कुछ ही दिनों में सीखा और अपनाया जा सकता है । पर इसका बाह्य स्वरूप बन पड़ना तभी संभव है जबमन निर्द्वन्द्व हो । यदि भीतर खीज झल्लाहट या असंतोष भरा होगा तो उसे ऊपरी आवरणों में दबाया नहीं जा सकता । वह किसी न किसी रूप में किसी न किसी अवसर पर फूट पड़ता है और असलियत तथा बनावट के भेद को खोल देता है ।

जो गलतियाँ हो चुकी हैं, उन्हीं पर सदा सोचते रहने से मन अपने आपको अपराधी की स्थिति में गिनने लगता है और आत्म विश्वास खो बैठता है । ऐसी दशा में उचित यही है कि जिन भूलों का जिस रूप में परिमार्जन-प्रायश्चित्त हो सकता हो उसे करे और नये जीवन की नई पहल करने और नई योजना बनाकर नई सफलता की दिशा में अग्रसर हो । भूत के साथ उलझे रहने की अपेक्षा यह उत्तम है कि उज्ज्वल भविष्य की बात सोचे और तदनुरूप वर्तमान को बनाने का प्रयास करे । पिछली असफलताएँ यही बताती हैं कि जितनी सतर्कता और दूरदर्शिता बरती जानी चाहिए थी उसमें कमी रह गई । ठोकर खाते ही शिक्षा यही ग्रहण की जानी चाहिए कि आगे आँख खोलकर देखें और उस असावधानी से बचें , जिसके कारण पिछली बार भूल हुई और हानि उठानी पड़ी ।

हनुमान लंका जा रहे थे । समुद्र के बीच में कई छोटे द्वीप थे । उनमें एक में सुरसा नामक राक्षसी रहती थी । उसे अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त थीं । उनमें एक यह भी थी कि वह अपना शरीर जब चाहे तब जितना छोटा या बड़ा करले ।

वह लंका की प्रहरी थी । जब हनुमान को ऊपर से जाता देखा तो सुरसा ने उन्हें पकड़ लिया और अपना मुँह बड़ा करके उसने हनुमान को दबोच लिया ।

हनुमान को भी सिद्धियाँ उपलब्ध थीं । उनने अपना शरीर बढ़ाया ताकि सुरसा के मुँह से निकल सकें । सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई । हनुमान भी बढ़ाते गये ।

इस प्रतिस्पर्धा में विस्तार तो बढ़ता जा रहा था पर कोई हल नहीं निकल रहा था । हनुमान को दूसरी तरकीब सूझी । उनने अपना रूप छोटा किया और मच्छर समान बना लिया । सुरसा का मुँह फटा का फटा रह गया और वे सहज ही बाहर निकल गये ।

तृष्णा सुरसा है । महत्वाकांक्षी अपने वैभव का विस्तार करते हैं पर वे उतने नहीं बढ़ पाते जितनी कि तृष्णा बढ़ जाती है । सन्तोष अपनाकर विनम्र बन कर ही इस संकट से 'उबरा' जा सकता है ।

शिक्षा अनुभवी लोगों से ली जा सकती है । जो मन को अहर्निशि साथ रहने वाला फलदायी द्रेवता मानते रहे हैं और जिन्होंने आत्म परिष्कार के आधार पर प्रगति की है, उन्हीं से परामर्श करना उचित है । जो परावलम्बन की या अनीति अपनाने की सलाह देते हैं, उनसे बचकर रहना ही उचित है । मन को सुसंस्कृत बनाने में अपना ही आत्म-निरीक्षण और अभिनव निर्धारण सफल होता है , इस तथ्य को हमें गहराई के साथ हृदयंगम कर लेना चाहिए ।

*

कलि का आगमन व प्रस्थान

"ओह ! यह दुरावस्था देवों के लिए दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर पशुओं से भी गया बीता आचरण ।" इन शब्दों के साथ उनके चेहरे पर आश्चर्य क्रोध घृणा के मिले-जुले भाव तैर गए । उन्होंने एक जलती दृष्टि सामने खड़े व्यक्ति पर डाली जो सहमा सिकुड़ा खड़ा था । सभासद महाराज के भाव परिवर्तन को देख रहे थे । सबकी झुंझलाहट का केन्द्र यही सांवले रंग का ठिगनी कद-काठी वाला आदमी था । उसकी गोल-मटोल काइयांपन लिए कंजी आखों में आशंका उभरने लगी थी । दण्ड का भय किसे नहीं कँपाता ? लेकिन उसने किया भी तो कुछ ऐसा ही था अनुज वधू के साथ कुकर्म च्च च्च अनेकों होंठों के साथ निकली इस ध्वनि ने उसके ऊपर घृणा की बौछार की ।

महाराज को राजसिंहासन पर असीन हुए अभी कुछ ही समय बीता था । उनके गौरवशाली पितामह पाँच पाण्डव महारानी द्रौपदी के साथ हिमालय की ओर चले गए थे । जाते समय अपने सारे उत्तराधिकार उन्हें सौंपते हुए कहा था परीक्षित !भरत वंश के गौरव की रक्षा का भार अब तुम्हीं पर है । हृषीकेश ने पंचभौतिक कलेवर भले त्याग दिया हो । पर वे अन्तर्यामी के रूप में प्रत्येक हृदय में विद्यमान हैं । अपनी ओर उन्मुख होने वाले प्रत्येक को वे प्रेरणा मार्गदर्शन प्रदान करते रहते हैं । गाण्डीव धन्वा के इन स्वरों के साथ उन चक्रपाणि की याद हो आयी । जन्मते ही उन्हें पहचानने के कारण तो वे परीक्षित कहलाए थे । तब से अब तक सौंपे गए गुरुतर दायित्व को पूरी सामर्थ्य के साथ निभाते आए थे । स्वयं के आचरण को आदर्श रूप में प्रस्तुत कर जन-जीवन को सन्मार्ग पर चलाना । जनता भी उन्हें अपने पालक पिता के रूप में जानती थी । सर्वत्र शान्ति-सौजन्य था और उत्कृष्ट चिन्तन उत्कृष्ट आचरण से भरा-पूरा जीवन । लेकिन आज.......।

उन्होंने अपना खिन्न मुख ऊपर उठाया । उन्हें समझ में नहीं आ रहा था इस दुराचारी को क्या दण्ड दें ? दण्ड समस्या का समाधान तो नहीं है । वे शास्त्रज्ञ नीतिज्ञ थे श्रुति के पारदर्शी ज्ञाता । आचार्य शुकदेव से उन्होंने मानवीय व्यक्तित्व की जटिलताओं, दुरूहताओं को जाना था । अनेकानेक कल्पनाओं में डूबता-उतराता मन तिकड़म भिड़ाती उलझनों को बटोरती फिरती बुद्धि, अनेकों जनों के संस्कारों आदतों से भरा चित्त प्रकृति की ओर बलात् खींचती अहंकार की गठीली रस्सी.... इतनी जटिलताओं में बँधा फिरने वाला मनुष्य कब क्या कर गुजरेगा कुछ भरोसा नहीं । जलधारा निम्नगामी सहज है उर्ध्वगामी होने के लिए विशेष शक्ति चाहिए । जीवन भी उर्ध्वगामी बनने के लिए साधना स्वाध्याय तप की शक्तियाँ चाहता है । उन्होंने इसकी व्यवस्थाएँ जुटाई थीं । नागरिक उर्ध्वमुखी जीवन-यापन करें, सतत् जागरूक थे इसके लिए वह । चिन्तन के तरंग वलय-भावों के उतार चढ़ाव के रूप में मुख मण्डल पर प्रकट हो रहे थे ।

इन्हें पढ़ते हुए ऋषि वाजिश्रवा बोले "धरती पर कलि का प्रवेश हो चुका है राजन् अब ऐसे आचरण आश्चर्य की वस्तु नहीं रहेंगे ।" ऋषि के कथन पर महाराज एक क्षण के लिए चौंके उनके प्रशस्त ललाट की रेखाएँ और गहरी हुई 'कलि का प्रवेश ' आश्चर्य से दुहाराया । कलि का प्रवेश सभासदों के होंठ बुद-बुदाये । अपराधी सिर नीचे किए खड़ा था । उसके लिए यह चर्चा व्यर्थ थी । कान में जबरन घुस पड़े शब्दों से उसे ऐसा लगा कि कलि नाम के किसी नए अपराधी की चर्चा हो रही है । उसके बढ़े-चढ़े अपराधिक कारनामें महाराज और राजसभा को चिन्तित कर रहे हैं ।

"कलि" परीक्षित ने इसके बारे में ऋषियों मुनियों आचार्यो से सुन रखा था । इसके विनाशकारी दारुण प्रभावों की चर्चा उनके कानों में पड़ी थी । लेकिन यह उन्हीं के राज्यकाल में वह भी इतनी जल्दी घुस पड़ेगा यह नहीं मालूम था । विषय ने बरबस उनके ध्यान को अपनी ओर खींच लिया । उन्होंने प्रधान आमात्य से कुछ मत्रंणा की । संकेत से दण्डाधिकारी को बुलाया और उस व्यक्ति के बारे में दण्ड निर्धारित कर उसे ले जाने का इशारा किया । अपराधी चला

गया। कुछ आवश्यक मंत्रणाओं के बाद सभा विसर्जित हो गई ।

पर अपराध की सृष्टि करने वाला कलि! महाराज अनमने मन से सायंकालीन भ्रमण के लिए निकले थे । उनके पीछे प्रधान सेनापति विरुपाक्ष भी थे । अभी वे नगर से बाहर निकल कर एक वन प्रान्त की ओर बढ़े ही थे कि एक पेड़ों के झुरमुट के पास एक गाय और बैल खड़े देखे । गाय का शरीर ऐसा था मानो हड्डियों के ढाँचे पर जैसे–तैसे खाल चिपटा दी गई हो । वह भी पूरी न हो पाने कारण यहाँ वहाँ नुच गई थी । उसकी गड्ढे जैसी आखों से आँसू की धार झर रही थी । अपनी पीठ पर हुए घावों पर बैठ रही मक्खियों को यदा–कदा अपनी पूँछ से हटाने का असफल प्रयास कर लेती । बैल की दशा और बुरी थी । चारों पैरों में सिर्फ एक सलामत बचा था–तीन टूटे थे दोनों एक दूसरे की ओर कातर दृष्टि से देखते करुण रव में रँभा रहे थे । निरीह पशुओं की यह बुरी दशा–सुबह की घटना से खिन्न महाराज का चित्त और भी खिन्न हो गया । मन ही मन संकल्प किया इनको इस बुरी दशा में पहुँचाने वाले का वध किये बिना न रहेंगे ।

सोचते हुए कंधे का धनुष ठीक किया और उनकी ओर बढ़े । संयोग से वह एक ऋषि के आशीर्वाद से पशुओं की भाषा को समझ सकते थे । पास जाकर सुना, गाय बैल से पूछ रही थी "वृषभ देव ! आपके तीन पावों को क्या हुआ ?"

बैल ने कहा "कल्याणि ! अब कलयुग का आगमन हो चुका है । आते ही उसने मेरे तीनों पैर तोड़ दिये । लगता है चौथा भी ज्यादा दिन सकुशल नहीं रह पायेगा ।" "क्यों आर्य" "आखिर कलि जो है न" बैल ने कहा " और आपकी भी तो बुरी दशा है ।"

"यहाँ भी कलि की चर्चा यह कलि.." उमड़ते क्रोध को मुश्किल से दबाया । चर्चा कर रहे इनकी ओर देख विनम्रता से पूछा "मातु और देव आप सामान्य नहीं लगते । कृपा कर अपना परिचय दें ।"

परिचय प्राप्त कर वे जान सके कि गाय तो धरती है और बैल धर्म । धर्म के चारों चरण सत्य, पवित्रता. करुणा, सेवा में तीन क्षत–विक्षत हो चुके हैं । धरती भी पाप का भार न ढो पाने के कारण मृत प्राय है । "यह कलयुग रहता कहाँ है ?" उनने अगला प्रश्न किया ।

"संकीर्णता और क्षुद्रता से भरा मन उसका निवास है। विचारों की हीनता के रूप में यह क्रियाशील होता है । जीवन को पाप और पतन के गर्त में धकेलना, धरती के स्वर्गीय वातावरण को नरक के कलुषित माहौल में बदल देना उसका उद्देश्य," धर्म ने लगभग बिलखते हुए अपनी बात समाप्त की । "इसके चरम विकास में सारे धरती वासी भ्रान्त हो जाएँगे ।" पृथ्वी ने अपनी बात पूरी करते हुए परीक्षित की ओर ताका ।

इन दोनों को सान्त्वना देते हुए वे आगे बढ़ चले । संयोग से कज्जल कृष्ण वर्ण किशोर के रूप में कलि मिल गया । उसकी रक्तिम आखों में क्रूरता झलक रही थी । पहचानते ही उनने तलवार निकाली ।

"क्षमा करें महाराज " कलि लगभग चीत्कारते हुए बोला "मैं आपकी शरण में हूँ ।"

"शरणागत की रक्षा " इस आदर्श ने उनके हाथ स्तम्भित कर दिये इस पर भी वह बोले "मैं तुम्हें इसी शर्त पर क्षमा कर सकता हूँ कि तुम पृथ्वी से चले जाओ ।"

"कहाँ चला जाऊँ ? अभी मेरा जाने का समय नहीं हुआ है । नियति ने मुझे पृथ्वी वास का आदेश दिया है । अभी तो मैं आपके कहने पर अपना प्रभाव सीमित कर सकता हूँ । आप जिस स्थान पर कहें वहीं रहने लगूँ " –कलि ने कहा ।

"ठीक है " परीक्षित कुछ सोचते हुए बोले तुम्हारे रहने के लिए द्यूत, मदिरापान, व्यभिचार, हिंसा–लोभ है तुम वहीं रहो ।" सुनकर कलि चलने को हुआ तभी उन्होंने टोकते हुए पूछा "तुमने धरती से अपने प्रस्थान का समय नहीं बताया ?"

कुटिल मुस्कान के साथ वह बोला "अभी तो मुझे चरम विकास करना है । एक समय धरती के सारे मनुष्य भ्रमित हो जाएँगे अनौचित्य सर्वथा ग्राह्य माना जाएगा और औचित्य परित्यज्य । उसी समय कालचक्र अधीश्वर महाकाल स्वयं सक्रिय हो उठेंगे बस वही मेरे प्रस्थान का समय है ।

हां उसके कथन पर महाराज को अवश्य हर्ष हुआ प्रधान सेनापति की ओर देखते हुए बोले "हृषीकेश की कृपा शीघ्र ही धरती पर विचारों की महाक्रान्ति के रूप में अवतरित हो ।" कुछ सोचते हुए दोनों वापस लौट चले । कलि अदृश्य हो चुका था ।

अनेकों घटनाक्रमों से भाराक्रांत धरती को अब विचारक्रान्ति के अवतरण की सुखद अनुभूति होने लगी है । यही है कलि के प्रस्थान का समय । सतयुग का प्रकाशमय स्वरूप उसकी काली छाया कैसे बर्दाश्त कर सकेगी ।

*

आज की समस्याएँ, कारण व समाधान

यजुर्वेद १५/५३ का सूत्र है—"सम्प्रच्यध्वमुप सम्प्रयात् ।" अर्थात् हे मनुष्यो ! सभी लोग मिल जुलकर आत्मोत्कर्ष एवं सत्प्रयोजनों के लिए प्रस्थान करो । तात्पर्य यह कि आत्मिक-प्रगति और सामाजिक समृद्धि पारस्परिक स्नेह-सद्भाव एवं उदार सहकारिता पर आधारित है । जीवन में सुख-सुविधा के साधनों से लेकर शान्ति और सुव्यवस्था का समावेश हो पाना इसी साधना द्वारा संभव हो सकेगा । सामाजिक उन्नति और प्रगति का लक्ष्य इन्हीं माध्यमों से प्राप्त होगा । इसी से स्वर्गीय वातावरण का सृजन हो सकेगा ।

पर इन दिनों देखा ठीक इसके विपरीत जा रहा है । व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत अगणित समस्याओं और भयावह विभीषिकाओं के सम्बन्ध में विचारक मनीषियों ने अपने विचार प्रकट करते हुए आश्चर्य प्रकट किया है । उनका कहना है कि पदार्थ समुच्चय और प्राणि समुदाय में जब हिलमिल कर सहयोगपूर्वक रहने और एक दूसरे के पूरक बनने की व्यवस्था है, तो फिर इस सृष्टि व्यवस्था का व्यतिरेक क्यों हो रहा है ? इसका मूलभूत कारण क्या है ?

गंभीरतापूर्वक खोजने पर पता चलता है कि नीति-नियमों की मर्यादा का उल्लंघन ही व्यक्ति के निजी एवं सामाजिक जीवन में अनेकानेक आधि-व्याधियों क्लेश-कलहों, विक्षोभ-विद्रोहों, अभाव, अतिक्रमण का निमित्त कारण बना हुआ है । असंयम शरीर का, असंतुलन मस्तिष्क का, आलस्य उत्कर्ष का, अपव्यय समृद्धि का, अनुदारता एवं अनाचार सहयोग-सद्भाव का मार्ग अवरुद्ध करता और पौराणिक रक्तबीज का उदाहरण प्रस्तुत करता है । इस असुर का रक्त जहाँ भी गिरता था, हर बूँद से एक नया दैत्य उपज पड़ता था । सहस्रबाहु के बारे में कहा जाता है कि उसकी एक भुजा कटने पर दूसरी उसी स्थान पर तत्काल उग आती थी । प्रस्तुत वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में भी यही बात है । न व्यक्ति के लिए अपनी उलझनें सुलझा सकना शक्य हो रहा है और न सामूहिक समस्याओं के, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कोई हल निकल रहे हैं । प्रायः राजनीतिक आधार पर ही हल खोजे जाते हैं । सुविधायें बढ़ाने या दबाने-दण्ड देने की कूटनीति ही हर समस्या के समाधान में चित्र-विचित्र तरीकों से प्रयुक्त होती रहती है । फलतः कभी-कभी तात्कालिक हल निकलते से लगते हैं ; किन्तु आकर्षण या दबाव घटते ही फिर सारी परिस्थितियाँ ज्यों की त्यों हो जाती हैं ।

व्यक्ति के सामने अस्वस्थता अशिक्षा, दरिद्रता, पारिवारिक कलह, असंतोष, आशंका, छल, आक्रमण जैसी चिन्तायें ही सिर पर चढ़ी रहती हैं और नारकीय स्तर का विक्षुब्ध वातावरण बनाये रहती हैं साहित्यकार, कलाकार, सम्पत्तिवान, बुद्धिजीवी, प्रतिभाशाली लोग किसी भी समाज के हृदय और मस्तिष्क माने जाते हैं । उनके हाथ की सामर्थ्य यदि विष-व्यवसाय से बचकर अपनी क्षमता आदर्शवादी उत्कर्ष में लगा सकें, तो बिना किसी शासकीय सहायता के मात्र जन सहयोग से ही सृजन का इतना बड़ा काम हो सकता है कि समूचे समाज को-राष्ट्र को स्वल्प साधनों से भी प्रगति के उच्चशिखर पर पहुँचाया जा सके । किन्तु देखा ठीक विपरीत जा रहा है । प्रतिभायें अपने साधनों समेत पतन-पराभव की खाई इसलिए खोदने में लगी हुई हैं कि उनका वैभव काम चलाऊ न रहकर कुबेर के समतुल्य बन सके । यही रीति-नीति है, जिसे बड़ों की देखा-देखी छोटे भी अपना रहे हैं और शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन सभी अनाचारी घुड़दौड़ में एक दूसरे से आगे निकलने की बाजी बद रहे हैं ।

संकटों और विग्रहों के मूल में साधनों की कमी कारण लगती है, पर वस्तुतः व्यक्तियों का पिछड़ापन एवं निकृष्टता से सना हुआ दृष्टिकोण ही आधारभूत कारण है । उसी ने श्रम, साधन और वैभव को हेय प्रयोजनों के साथ जोड़ा है, फलतः विष बीज बोने पर अमृत फल पाने का स्वप्न कहीं भी साकार नहीं हो रहा । अशिक्षा, गरीबी, बेकारी आदि समस्यायें जितनी जल्दी हल की जा सकें उतना ही उत्तम, किन्तु साथ ही एक बात और भी ध्यान रखी जानी चाहिए कि इनका निराकरण कर देने पर भी व्यक्ति या समाज के सुखी-समुन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती । उदाहरण के लिए फ्रांस, अमेरिका, ब्रिटेन जैसे समृद्ध देशों को लिया जा सकता है । वहाँ साधनों की

प्रचुरता रहते हुए भी कुत्सायें और कुण्ठाएँ पिछड़े देशों की तुलना में कहीं अधिक ही हैं ।इसके विपरीत जापान जैसा छोटा देश अपनी नैतिक विशिष्टता के कारण स्वल्प साधनों से ही समुन्नत जीवन जी रहा है । अतः साधनों की बहुलता को महत्व देते हुए भी यह भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अन्ततः मनुष्य का व्यक्तित्व ही उपार्जन और उपभोग का आधारभूत कारण है । यदि उस केन्द्र में पिछड़ापना घुसा बैठा रहा तो भ्रष्ट चिन्तन एवं दुष्ट आचरण के नजारे दीखते रहेंगे और सामर्थ्य का अवांछनीय प्रयोजनों में उपयोग होने से अनेकानेक संकट उत्पन्न होते रहेंगे ।

वस्तुतः व्यक्ति, समाज और विश्व के सम्मुख उपस्थित छोटी-बड़ी अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का मूलभूत कारण है । मानव-मानव में विग्रह, सहयोग का अभाव तथा चेतना का पथभ्रष्ट होना । दृष्टिकोण के दूषित होने से हेय स्तर की ललक-लिप्सायें उभरती हैं और उनकी पूर्ति के लिए संकीर्ण स्वार्थपरता, निष्ठुर अनुदारता एवं अनीति-आक्रामकता के तौर-तरीके अख्तियार करने पड़ते हैं । अनीति भरे स्वार्थ साधन के लिए दूसरों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सताना ही होगा । छद्म छुपा नहीं रहता, फिर आक्रमण का घाव तो बनेगा ही । घृणा, विक्षोभ से लेकर विग्रह जैसी अनेकों कष्ट कारक, दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रियायें उत्पन्न होती हैं और प्रतिशोधों का सिलसिला चल पड़ता है जिसका कहीं अन्त नहीं । अनाचारी पहले आक्रमण में ही कुछ कमा लेता है । इसके बाद तो चिरकाल तक अविश्वास, असहयोग और प्रतिशोध ही समय-समय पर उभरते हैं । ऐसे वातावरण में किसी को स्नेह, सद्भाव और सहयोग का प्रगति एवं प्रसन्नता के लिए नितान्त आवश्यक वातावरण तो मिलेगा ही कैसे ? आशंका और आत्मरक्षा के लिए ही मन सदा भयभीत, आतंकित बना रहेगा । यही है वह विश्लेषण-पर्यवेक्षण जिसे आज व्यष्टि और समष्टि के सामने प्रस्तुत असंख्यों समस्याओं का एक मात्र कारण कहा जा सकता है ।

यदि अनुदारता एवं संकीर्ण स्वार्थपरता के स्थान पर उदार आत्मीयता की प्रतिष्ठापना की जा सके तो उतने भर से व्यक्ति और समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान निकल आयेगा । इसका शुभारंभ अपने से ही करना होगा । अन्धानुकरण करने से बचते हुए यदि "सादा जीवन उच्च विचार " की नीति अपनाई जा सके तो कम योग्यता एवं कम आमदनी वाले व्यक्ति भी सुखी संतुष्ट जीवन जी सकते हैं । आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाकर कोई भी व्यक्ति शरीर को स्वस्थ, मन को प्रफुल्ल, धन को सन्तोषजनक, परिवार को सुविकसित उद्यान की तरह मनोरम, शान्तिदायक देख सकता है । सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र भी दैनिक जीवन के साथ जुड़े हुए हैं । यदि दृष्टिकोण में आध्यात्मिकता का समावेश रहे तो जीवन की सभी दिशाधारा हरी-भरी, फल-फूलों से लदी हुई , उत्साहवर्धक, संतोषजनक एवं आनन्ददायक बनकर रहेंगी । परिस्थितियाँ मनचाही न होने पर भी मनःस्थिति की उत्कृष्टता अपनाकर व्यक्ति सदा सर्वदा हँसता-हँसाता, उठता उठाता दृष्टिगोचर हो सकता है ।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर की व्यापक समस्यायें नैतिकता के धूमिल होने और निकृष्टता की मात्रा बढ़ जाने के कारण ही उत्पन्न होती हैं । आत्मीयता, उदारता, सहकारिता, सद्भावना की उदात्त दृष्टि रखी जा सके । अधिकारों की तुलना में कर्तव्य को प्राथमिकता मिल सके । मिल बाँटकर खाने -"संजीवास्य " अर्थात् एक साथ-मिलजुल कर जीने की आदत पड़ सके तो कोई कारण नहीं कि सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की जटिलता सहजता से हल न हो सके । मनुष्यों की अनुदारता की तरह राष्ट्रों की संकीर्णता ही दूसरों की उपेक्षा करके अपना विलास बढ़ाने-वर्चस्व कायम रखने में लगेगी तो विग्रह एवं संघर्ष को जन्म देगी ही । इन उलझनों को न कूटनीतिक चतुरता सुलझा सकती है, न प्रलोभनों, धमकियों दबावों का माहौल ही चिरस्थायी समाधान प्रस्तुत कर सकता है । विश्व संकट के विभिन्न नाम-रूपों के पीछे संकीर्ण स्वार्थपरता की असुरता ही डरावने कुचक्र रचती रहती है । आत्मिकी द्वारा अनुप्राणित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने, जन-जन के मन-मन में उतारने वाली युग ऋषि प्रणीत विचारक क्रान्ति को व्यापक बनाया जा सके तो समूचे संसार को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि चिरकाल से उलझी हुई समस्त समस्याओं का स्थायी समाधान निकल आयेगा । अनुदारता के मिटते ही सभी समस्यायें स्वतः ही हल हो जायेंगी ।

*

हमारा एक मात्र सच्चा अध्यापक है आदर्श । उसकी शिक्षा-दीक्षा लेने वाले छात्र, नर-रत्न बनकर निकलते हैं । इस पाठशाला से बढ़कर और कोई शिक्षा संस्थान नहीं ।

गायत्री महाशक्ति का स्वरूप और रहस्य

ऐतरेय ब्राह्मण में गायत्री शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है –

"गयन प्राणान् त्रायते सा गायत्री ।"

अर्थात् जो " गय " प्राणों की रक्षा करती है , वह गायत्री है ।

प्राण कहते हैं चैतन्यता एवं सजीवता को । हमारे भीतर जो गति, क्रिया, विचार शक्ति, विवेक एवं जीवन धारण करने वाला तत्व है, प्राण कहलाता है । यह प्राणशक्ति ही प्रेरणा, स्फूर्ति, साहस, शौर्य, पराक्रम एवं पुरुषार्थ की जननी है । गायत्री महाशक्ति के साथ सम्बद्ध होने की प्रथम प्रतिक्रिया ही यह होती है कि साधक का प्राण प्रवाह शून्य में बिखरना रुक जाता है और उसका ऐसा संरक्षण होता है, जिससे कोई महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया जा सके । गायत्री उपासना प्राणशक्ति के क्षरण को रोकती है, उसकी रक्षा करती है और इस संरक्षण से लाभान्वित उपासक दिनों दिन प्रगति पथ पर अग्रसर होता चला जाता है । इस महाशक्ति का आंचल थाम कर हर कोई अपने सामान्य प्राण को महाप्राण में परिणत–विकसित कर सकता है ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही उस महाशक्ति का नाम उसके क्रियाकलाप, स्वभाव एवं गुणों के अनुरूप तत्वदर्शी मनीषियों ने 'गायत्री ' रखा । इस विश्वव्यापी चेतन तत्व का उल्लेख करते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है –

'सा हैषा गायत्री गयांस्तत्रे । प्राथाः वै गयांस्तत् प्राणांस्तत्रे तद् यद् गायांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम ।' अर्थात् "प्राणों का त्राण करने वाली गायत्री है । उपासना करने वाले के प्राण को निर्मल एवं समर्थ बनाती है, इसलिए गायत्री कहते हैं ।"

प्राणियों में जितनी तेजस्विता दृष्टिगोचर हो, समझना चाहिए कि उनमें उतना ही प्राणांश अधिक है । प्राण शक्ति का संचय ही प्राणी को सच्चे अर्थों में शक्तिवान बनाता है । निर्जीव, निस्तेज और निष्क्रिय लोगों में इस तत्व की न्यूनता होती है और तेजस्वी–मनस्वी महामानवों में, पुरुषार्थी साहसियों में अधिकता । फिर भी यह तत्व न्यूनाधिक मात्रा में रहता सभी के अन्दर है । परमात्मा की इस पवित्र शक्ति का दर्शन हम प्रत्येक प्राणी में कर सकते हैं । इसीलिए गायत्री को जगतमय और जगत को गायत्रीमय कहा गया है । स्कन्द पुराण में इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है–"सब लोकों में विद्यमान जो सर्वव्यापक परमात्म शक्ति है, वह अत्यन्त सूक्ष्म सत्प्रकृति ही चेतनशक्ति गायत्री है ।"

अपना परिचय देते हुए इस महाशक्ति ने शास्त्रों के विभिन्न कथा–प्रसंगों में इस रहस्य का रहस्योद्घाटन किया है कि मनुष्य के अन्दर जो सचेतन विशेषता होगी, उसके मूल में ब्राह्मी–महाशक्ति का वैभव रहा होगा । धन–सम्पदा तो लोग उचित–अनुचित कई तरीकों से कमा लेते हैं, किन्तु यदि किसी का व्यक्तित्व विकसित हो रहा होगा, तो उसके अन्तराल में यही ब्राह्मी चेतना–'गायत्री' काम करती होगी । जिस सामर्थ्य के बल पर लोग विभिन्न प्रकार की सफलताएँ उपलब्ध करते हैं, उस शक्ति को भौतिक नहीं, आत्मिक ही समझना चाहिए आत्मबल के अभाव में समृद्धि का उपार्जन तो दूर, व्यक्ति उसकी रखवाली भी नहीं कर सकता । इस रहस्य का उदघाटन दैवी भागवत में उसी शक्ति के श्री मुख से इस प्रकार हुआ है–

'अहं बुद्धि रहं श्रीश्चधृतिः कीर्तिः ...विद्धि पद्मज ।' अर्थात् "मैं क्या नहीं हूँ । इस संसार में मेरे सिवाय और कुछ नहीं है । बुद्धि, धृति, कीर्ति स्मृति, श्रद्धा, मेधा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति शान्ति, पिपासा, जरा, अजरा विद्या, शक्ति–अशक्ति, सत्–असत्, परापश्यन्ती आदिवाणियाँ सभी कुछ मैं ही हूँ । " समस्त सुख साधनों का वास्तविक आधार और मूल स्रोत वस्तुतः गायत्री है ।

मानवी चेतना के आरंभिक स्तर से लेकर ऊँचे–ऊँचे अनेक दिव्य स्तर हैं । सामान्य समझदारी में जितनी चेतना है, संसार की स्वाभाविक व्यवस्था के अनुसार प्राणियों को मिलती रहती है, पर उच्चस्तरीय क्षमता प्राप्त करने के लिए उसे कुछ विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं । उन विशेष प्रयत्नों का नाम ही उच्चस्तरीय साधना है । इस पुण्य प्रक्रिया द्वारा पुरुषार्थी साधक अपनी आन्तरिक स्थिति इतनी विकसित कर लेते हैं कि

इस निखिल महदाकाश में संव्याप्त उस ब्राह्मी महाशक्ति–गायत्री से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकें। यह सम्बन्ध जितना गहन और जितना प्रौढ़ परिपक्व होता है, उतनी ही उच्चस्तरीय विभूतियाँ मानस क्षेत्र में अवतरित होती हैं। यह अवतरण ही मनुष्य को महामानव, सिद्ध–पुरुष एवं अतिमानव के रूप में विकसित करता है।

लौकिक प्रयत्नों से मनोबल के स्तर को बढ़ाया जा सकता है। सांसारिक साधनों की सहायता से, अध्ययन, अभ्यास, प्रशिक्षण एवं परिश्रम से इतना ही हो सकता है कि गुण, कर्म, स्वभाव की व्यवस्था बन जाय उन्नति कर ली जाय पर यह उन्नति आत्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं कही जाती। कितने ही चतुर, सुशिक्षित, शिष्ट और व्यवहार कुशल व्यक्ति संसार में पाये जाते हैं। उन्हें सज्जनोचित आदर, सत्कार सहयोग और संतोष तो मिलता है, पर इससे आगे की विभूतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। जिन दिव्य शक्तियों के बलबूते मनुष्य महान आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है वे उसे तभी मिलती हैं जब विराट–ब्रह्माण्ड में संव्याप्त दैवी चेतना की प्रतीक शक्ति गायत्री आद्यशक्ति के साथ अपना सम्बन्ध जोड़े।

शास्त्रों में गायत्री महाशक्ति की जिन विभूतियों का वर्णन किया और महिमा–महत्ता गाई गयी है वे सभी उसमें प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। आवश्यकता केवल इतनी भर है कि व्यक्ति अपनी पात्रता का विकास करे और उन लाभों से लाभान्वित हो, उन विभूतियों को धारण करके दिव्य जीवन जी सकने की स्थिति तक पहुँचे। गायत्री उपासना द्वारा जो अपना जितना अधिक आन्तरिक परिष्कार कर लेता है, इसी आधार पर वह महाशक्ति अवतरित होती है। पात्रता के अनुरूप ही उसके अनुग्रह का दिव्य वरदान हस्तगत होता है जिसे पाकर–साधक सर्वतोभावेन धन्य हो जाता है।

महाशक्ति गायत्री का प्यार अनुग्रह जिसे मिला, उसे संसार की कोई वस्तु अप्राप्त नहीं रह जाती। उसके भीतर से ही दिव्य प्रेरणाएँ उठनी आरंभ हो जाती हैं और उनके प्रकाश में, जो सर्वसाधारण के लिए अप्रकट एवं अज्ञात है वह उसके लिए हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता है। जो दूसरों के लिए लालसा एवं कामना का क्षेत्र है, वह उसकी मुट्ठी में होता है। उसे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा मिलती है जिसके आलोक में अदृश्य को देख सकना, अनागत को समझ सकना, उसकी सामर्थ्य के अन्तर्गत होता है। ऐसा व्यक्ति ऋषि बन जाता है। उसे ब्राह्मी शक्ति–गायत्री का सर्वोपरि उपहार–ब्रह्मपद प्राप्त होता है। उच्चस्तरीय विशेषताओं और विभूतियों से विभूषित वह ब्रह्मपरायण मनुष्य सामान्य दीखते हुए भी वस्तुतः देवत्व की भूमिका में ही विचरण करता है।

शक्ति तंत्र में उस महाशक्ति ने अपनी इसी विशेषता की चर्चा की है। वह जिसका पथ प्रदर्शन करती है जिसे प्यार करती है, उसे अपना सर्वोत्तम उपहार प्रदान करने में संकोच नहीं करती है। यथा–

"अहमेक स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवभिरुत मानुषेभियं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमर्षिं तं सुमेधा।"

अर्थात् "तत्वज्ञान की उपदेशक मैं ही हूँ। मैं जिसे प्यार करती हूँ, उसे समुन्नत करती हूँ। उसे सद्बुद्धि देती हूँ, प्रज्ञावान बनाती हूँ, ऋषि बनाती हूँ और ब्रह्मपद प्रदान करती हूँ।"

परोक्ष देव सत्ताओं एवं दृश्यमान देवमानवों, ऋषि–मनीषियों की महत्ता का आधार गायत्री ही है। उसका जितना अंश जिसे मिला वह उतना ही शक्तिशाली एवं प्रतिभावान हो गया। ऋग्वेद में इसे ही देवताओं का आदिस्रोत कहा गया है। नारायणोपनिषद् में इसी गायत्री तत्व का उल्लेख अदिति नाम से हुआ है। वही समस्त हलचलों का, देव, गन्धर्व, मनुष्य पितर, असुर आदि का मूल है। उसी विशाल गायत्री के गर्भ में विश्व के सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं। गरुड़ पुराण में कहा गया है कि त्रिदेवों में भी जो शक्ति काम कर रही है, वह तत्वतः गायत्री ही है। यथा–

"गायत्यैव परोविष्णु, गायत्र्यैव परः शिवः। गायत्र्यैव परोब्रह्मा, गायत्र्यैव त्रयी ततः॥"

अर्थात् गायत्री में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तीनों शक्तियाँ समाई हुई है। गायत्री में तीनों वेद सन्निहित हैं।

ब्रह्माजी द्वारा चारों वेद बनाये गये। उनमें ज्ञान–विज्ञान के समस्त सूत्र–संकेत समाविष्ट किये गये। इस महान रचना की प्रेरणा उन्होंने गायत्री से ही ली। वेदों की रचना का मूल आधार गायत्री है और वही विधाता की कृतियों का उद्‌गम प्रेरक भी। गायत्री से बढ़कर इस संसार में और कोई बड़ी शक्ति भी तो नहीं? जिसने इस महाशक्ति के स्वरूप और रहस्य को समझ लिया, जिसे गायत्री प्राप्त हो गई उसके लिए और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

*

नाभिचक्र जगाएँ—शक्ति के पुंज बनें

नाभि संस्थान को शरीर चक्र की धुरी माना गया है । मानवी काया का यह ऐसा विलक्षण केन्द्र है जिसके साथ अनेकों भौतिक और आध्यात्मिक प्रयोजन जुड़े हैं । मध्य भाग में अवस्थित होने के कारण शरीर को गतिशील रखने में यह प्रमुख भूमिका तो निभाता ही है, वैभव और वर्चस्व के ऋद्धि–सिद्धियों के भाण्डागार भी इस केन्द्र में समाहित हैं । इसी स्थान में मेरुदण्ड के लम्बर रीजन में शरीर का तीसरा प्रमुख सूक्ष्म शक्ति केन्द्र 'मणिपूर' चक्र स्थित होता है । विज्ञानवेत्ता जिसे 'सोलर प्लेक्सस या सूर्य चक्र के नाम से सम्बोधित करते हैं इसका दूसरा नाम 'अग्नि चक्र' भी है ।

एम्ब्रियोलॉजी अर्थात भ्रूण विज्ञान के अन्तर्गत नाभि संस्थान का विशेष महत्व है । जीवधारी भ्रूणावस्था से लेकर परिपक्व विकसित शिशु बनने तक जितने दिनों गर्भावस्था में रहता है, तब तक वह माता के शरीर के साथ अपने नाभि केन्द्र से एक नलिका द्वारा जुड़ा होता है जिसे अम्बिलिकल कार्ड या गर्भनाल कहते हैं । इसके माध्यम से ही जननी की प्राण ऊर्जा, रस–रक्त एवं अन्यान्य पोषक तत्व उसके शरीर में पहुँचते हैं और वह एक बिन्दुकलल से विकसित होता हुआ शिशु रूप धारण करता है । प्रसव के उपरान्त ही जननी और शिशु को पृथक इकाई के रूप में अपना–अपना कार्य अपने बलबूते करने का अवसर मिलता है । इससे पूर्व नाभि मार्ग से ही शिशु पोषण प्राप्त करता है । आयुर्वेद ग्रंथों एवं योगशास्त्रों में इसीलिए नाभि केन्द्र को महत्वपूर्ण माना गया है और 'नाभिस्याः प्राणिनां प्राणाः ' कहकर उसे जीवनी शक्ति का प्राण ऊर्जा का केन्द्र बताया है । अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों ने इसे शरीर स्थित दूसरे मस्तिष्क 'एबडोमिनल ब्रेन' की संज्ञा दी है ।

कुण्डलिनी जागरण में 'मणिपूर' चक्र का विशेष महत्व है । यों तो कुण्डलिनी महाशक्ति का उदगम स्थल मूलाधार चक्र है, पर उसका उदगम छः अंगुल ऊँचाई पर नाभिकी सीध में हैं । मूलाधार को जो ऊर्जा अपने कार्य संचालन के लिए उपलब्ध होती है, वह वस्तुतः नाभि द्वारा ही बाहर से भीतर तक पहुँचती है । इसका प्रमुख कारण है नाभि में सूर्य का उपस्थित होना । प्राणायाम एवं ध्यान–धारणा के माध्यम से नाभि संस्थान में स्थित सूर्य तथा ब्रह्माण्ड स्थित सूर्य का योग होता है और उस स्थल से सूर्य मिश्रित प्राण ऊर्जा की सूक्ष्म कलाएँ मूलाधार तक पहुँचती हैं और प्रसुप्त कुण्डलिनी के जागरण में सहायक बनती हैं । शास्त्रों में इस सम्बन्ध में कहा गया है–'उदरे तु यमं विद्यादादित्यं नाभि मंडले " अर्थात् पेट में यम और नाभि मंडल में सूर्य विद्यमान है । पातंजलि योग सूत्र ३/२६ में भी नाभि केन्द्र में सूर्य की स्थिति बताई गई है और कहा गया है कि इसमें संयम करने से भुवन का अर्थात् लोक–लोकान्तरों का ज्ञान प्राप्त होता है । सूर्य से सम्बन्धित होने के कारण 'मणिपूर' चक्र की प्रकाश किरणें सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती हैं और शरीर तथा सृष्टि का सारा रहस्य साधक के सम्मुख प्रकट हो जाता है ।

अथर्ववेद में इस संस्थान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वर्षा का केन्द्र बादल होते हैं उसी प्रकार काया में नाड़ियों का केन्द्र नाभि स्थित सूर्य चक्र जहाँ से निकल कर वे समूचे शरीर तंत्र को नियंत्रित करती हैं । मणि की तरह चमकदार यह संस्थान अग्नि की तरह अपना कार्य करता और जीवन की गतिविधियों को ऊर्जा–गर्मी प्रदान करता है । इसे 'तेजस' केन्द्र भी कहते हैं ।

वेद, उपनिषदों में इसी को वैश्वानर, पूषन अग्नि, सौर तेज, अन्तज्योर्ति आदि नामों से सम्बोधित किया गया है । यह केन्द्र सभी प्रकार की अग्नियों का अधिष्ठाता है । इसके जागरण से शरीर की तीनों अग्नियाँ प्रदीप्त होतीं और प्राण चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने में सहायक बनती हैं । अग्नि तत्व की प्रधानता होने के कारण यह प्राण शक्ति की प्रबलता का, साहस और वीरता का संकल्प एवं पराक्रम का भी केन्द्र है । इसका सम्बन्ध निद्रा भूख, प्यास लगने से है । प्रसुप्त पड़े रहने पर ईर्षा तृष्णा, भय, घृणा , लोभ, मोह आदि के विकार ही मन में जमे रहते हैं । सामान्य परिस्थितियों में इससे मात्र जैविक गतिविधियों को संचालित करते रहनें लायक ऊर्जा ही उपलब्ध होती है, किन्तु प्रयत्नपूर्वक अग्निचक्र को जाग्रत एवं विकसित कर लेने पर मनुष्य अपनी

इच्छाओं पर नियंत्रण पा लेता है। दुख, रोग और मृत्यु का भय उसे नहीं सताता। इसके साथ ही वह अतीन्द्रिय क्षमताओं का स्वामी बन जाता है। उसे पर काया प्रवेश से लेकर दूर गमन, दिव्य दर्शन आदि अनेकों सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं। शिव संहिता ५/१०६-१०८ में 'मणिपूर' केन्द्र पर ध्यान करने से पाताल सिद्धि बताई गई है।

आयुर्वेदिक ग्रंथों में 'मणिपूर' चक्र को सूर्य, अग्नि या समान वायु का केन्द्र माना गया है जो रस, धातु, मल, दोष, आम आदि का पाचन करता है। इसके असंतुलित होने या शिथिल पड़ जाने पर भोजन का पाचन ठीक ढंग से नहीं हो पाता इसके विपरीत यह धातु और मल का अवशोषण करने लगता है और अंततः प्राण ऊर्जा को भी अवशोषित करके व्यक्ति को मृत्यु के मुख में धकेल देता है। इस संदर्भ में चिकित्सा विज्ञानियों ने गहन खोजें की हैं। निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए उनने बताया है कि नाभि मंडल स्थित 'मणिपूर' पर ध्यान-धारणा केन्द्रित करने पर समान वायु एवं अग्नि साम्यावस्था में आ जाते हैं। सर्व प्रथम समान वायु सक्रिय होती और अग्नि को उत्तेजित करती है। तदुपरान्त यह अग्नि पाचन एवं अवशोषण में भाग लेती है। इससे न केवल शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता है, वरन् वाक्शक्ति भी जाग्रत हो जाती है। सुश्रुत संहिता ६६/६९ में भी यही बात कही गई है। मर्मस्थल के रूप में वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह स्थान सभी उत्पादनों का शीर्ष है। इस पर लगने वाला आघात व्यक्ति के लिए प्राण घातक सिद्ध हो सकता है।

योग राजोपनिषद् १३/९२ में उल्लेख है कि सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड मनुष्य के नाभि चक्र में समाहित है, जहाँ से निकलने वाली वैद्युतीय तरंगें न केवल शरीर तंत्र को नियंत्रित करती हैं, वरन् समूचे ब्रह्माण्ड में अपने स्तर की हलचलें उत्पन्न करती हैं। यही बात गोरक्ष पद्धति ४३/३१ में भी कही गई है कि 'मणिपूर' चक्र में ध्यान केन्द्रित करने से असीम शक्ति उद्भूत होती है जिसके माध्यम से साधक सम्पूर्ण संसार में हलचल पैदा कर सकता है, नवीन क्रान्तियों को जन्म दे सकता है। इसी ग्रंथ में नाभि चक्र को कमलाकार बताते हुए कहा गया है कि इससे २४ नाड़ियाँ निकलती हैं जिनमें से दस नाड़ियाँ ऊपर की ओर जाती हैं और शब्द, रस, गंध आदि प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती हैं। दस शिरायें शरीर के निचले भाग की ओर जाती हैं और सम्बन्धित अंग-अवयवों को नियंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त चार और नाड़ियाँ निकल कर कई शाखा-प्रशाखाओं में बँट जाती हैं और छोटे-छोटे स्थानों की आपूर्ति करती हैं। यह शक्ति केन्द्र सुषुम्ना में मणि रत्नों की भाँति धागे से जुड़ा होता है, इसीलिए इसे 'मणिपूर' चक्र 'कहते हैं। शारदा तिलक में इसे दस पंखुड़ियों वाले कमल पुष्प के रूप में उल्लेख करते हुए कहा है कि यह रुद्र का स्थान है जो समस्त सृष्टि का पोषण करते हैं। इसे विकसित कर लेने पर मनुष्य सभी प्रकार की व्यथाओं एवं कामनाओं पर विजय पा लेता है। उस में परकाया प्रवेश की सामर्थ्य आ जाती है।

"जस्ट हाउ टू वेक दि सोलर प्लेक्सस" नामक अपनी खोजपूर्ण कृति में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एलिजावेथ टौन ने सूर्य चक्र और उसमें सन्निहित शक्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके अनुसार नाभि मण्डल में दस पंखुड़ियों वाली कमलाकृति सूक्ष्म संरचना होती है जिसे ही 'सोलर प्लेक्सस' कहते हैं। इस पर सविता का ध्यान करने से आत्म सूर्य अर्थात् अन्तर्ज्योति का प्रत्यक्ष आभास होने लगता है। इस जागरण से मन की मलिनताएँ तथा विकृतियाँ दूर होतीं और जीवन में उच्चस्तरीय उत्साह का संचार होता है। ओजस तेजस् की अभिवृद्धि होती है।

नाभि चक्र सूर्य का अधिष्ठान स्थल होने के कारण तेजस् का-ज्ञान शक्ति का केन्द्र है। हमारी वृत्तियों से इसका गहरा सम्बन्ध है। चैतन्य अवस्था में जब यह सक्रिय रहता है, तब भावनाएँ एवं वृत्तियाँ उच्चस्तरीय होती हैं। मन में प्रसन्नता की, स्फूर्ति की तरंगें प्रवाहित होती रहती हैं। किन्तु संकुचित अवस्था में अशुभ वृत्तियाँ उभरतीं और मन खिन्न तथा उदास बना रहता है। सामान्य रूप से इस शक्ति केन्द्र में सौरशक्ति का नैसर्गिक प्रवाह सतत् होता रहता है। किन्तु जब कभी मनुष्य अपने स्वयं के चिन्तन, आचरण या क्रिया-व्यवहारों के द्वारा उस प्रवाह में बाधा उत्पन्न कर लेता है तो जीवन तत्व-प्राण ऊर्जा की कमी के कारण अनेकानेक आधि-व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। सतत् संकुचित रहने के कारण सम्बद्ध नाड़ी समूह कमजोर पड़ जाते हैं और अत्यधिक सिकुड़ जाने के कारण उनमें प्राण तत्व का प्रवाह रुक जाता है। इस केन्द्र में जीवन तत्व उत्पन्न करने की अदभुत एवं असीम सामर्थ्य है।

नाभि सूर्य का प्रतीक है। प्राण चेतना की उत्पत्ति इसी केन्द्र से होती है। प्राणायाम एवं सविता साधना द्वारा वस्तुतः सूर्य चक्र का ही जागरण किया जाता है जिससे आत्मा अपना समबन्ध सीधे सूर्य से जोड़कर प्राणाग्नि का विकास करती रहती है इस केन्द्र को जाग्रत कर लेने का अर्थ है शक्तिपुंज बन जाना महाप्राण बन जाना।

*

वह कालजयी

तेज धमाके ने पाम्पिआई निवासियों को स्वप्नों के रंग-बिरंगे संसार से जागरण की भूमि पर ला पटका। आँखें मलते हुए वे सोचने लगे इसका कारण क्या है? सभी का मन सोच पाने में अवश महसूस कर रहा था। प्रायः सबके सब एक अनचाही बेचैनी से घिर गए थे, जिसकी तीव्रता वातावरण में फैलती जा रही गर्म लहर की तरह लगातार बढ़ती जा रही थी। कोई अपने को सँभाल पाए तब तक मकान के दरवाजे की तली से धुआँ प्रवेश करने लगा। रात का घना अन्धकार धुएँ से लिपट कर गहराता जा रहा था।

तरह-तरह की आंशकाओं से प्रत्येक मन घिरा था। शाम को सभी प्रसन्न थे। प्रसन्नतापूर्वक सभी ने नींद की चादर ओढ़ी थी। ओढ़ते समय कितनी कल्पनाएँ की थीं प्रत्येक ने। नींद में जाने से पहले मन न जाने कितने तरह के सुखद-दुखद कल्पनाओं की चादर बुनता रहता है।

विवश होकर मकानों के दरवाजे खुलने लगे। बाहर आते हुए लोग भय और आश्चर्य से जड़ प्राय हो गए थे। यदा-कदा एक दूसरे की ओर सूनी आखों से देख लेते। दहकते-अँगारों और जलते उछलते पत्थरों से दिशाएँ चमक उठी थीं। गर्मागर्म लावा आग की नदी बन नगर की ओर बहता चला आरहा था।

"ज्वालामुखी"अनेकानेक कण्ठ चीत्कार उठे। इस चीत्कार के साथ वातावरण चीख पुकारों से भर गया। सभी को अपना जीवन बचाने की पड़ी थी। जीवन क्या है? एक अनोखा प्रश्न चिन्ह उभर जनसमूह के बीच फैलने लगा। साथ ही उभरने लगे अनेकों जवाब। कहीं निर्ममता तो नहीं, अन्यथा बिलखते शिशुओं-असहाय वृद्धों अपंग-अपाहिजों को आग की भट्टी में छोड़कर लोग इस तरह क्यों भागते? तब निश्चित ही यह स्वार्थ होगा। इसी कारण हड़बड़ी में कुछ औरों के कीमती सामान को हथिया कर भागकर सुरक्षित स्थान में जा छुपना चाहते थे।

एक प्रश्न के अनेक उत्तर चिन्तन के द्वारा नहीं क्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहे थे। इनके सत्य-असत्य होने का निर्णय होता तब चीख पुकार के बीच एक अन्य वाणी उभरी। इसमें आश्वासन था। सभी स्वर मौन हो गए। बस वही मुखर था। वह सभी को व्यवस्थित करता हुआ नगर द्वार से बाहर कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए निर्देश देने लगा। एक-एक कर सभी बाहर निकलने लगे। अब पहले जैसी हड़बड़ी न थी। उसकी निश्चिन्तता स्वयं की ओर से बेफिक्र होकर औरों को बचाने के प्रयास को देख दूसरों के मन में भी विश्वास जगने लगा था।

एक समूह नगर से बाहर होता। वह दूसरों को व्यवस्थित कर नगर द्वार से बाहर करने के प्रयास में लीन हो जाता। द्वार से बाहर निकलते लोग उससे कहते "आप भी भाग चलिए।" इन वाक्यों के साथ उसके होंठों पर हँसी की एक क्षीण रेखा उभर उठती। उन्हें जाने का संकेत करता हुआ वह कह देता "आप लोग जाएँ मुझे औरों को बाहर करना है।" ऐसे विकट समय में औरों की चिन्ता भीड़ आश्चर्य से उसकी ओर देखती। शंकाकुल मन-प्रश्न उछालने में कुशल बुद्धि से सवाल टपक पड़ते "कौन है यह जिसे अपने जीवन की परवाह नहीं?"

हड़बड़ी में उभरे इन प्रश्न चिन्हों के उत्तर तलाशने जितना समय किसी को न था। एक समूह के बाद दूसरा समूह उसकी निर्भीकता पर आश्चर्य प्रकट करता बाहर चला जाता। धीरे-धीरे सारा नगर खाली हो गया। वह बाहर निकला। नगर द्वार के लौह कपाट बन्द किए। द्वार से सटकर एक कोने में खड़ा हो गया। यह उसका चिर परिचित स्थान था। पिछले कई दशकों से वह यहाँ खड़ा होता रहा था। वह नगर का रक्षक था विकट समय में भी उसे अपने कर्तव्य का ध्यान था। उसके लिए कर्तव्य जीवन का पर्याय था। कर्तव्य की सुरक्षा जीवन की सुरक्षा थी।

इतनी देर में लावे का उफान समीप आ चुका था। एक गर्म झोंका उठा वह आकण्ठ आग में डूब गया। सारा शरीर जल गया। अन्तिम क्षणों में भी उसके चेहरे पर आनन्द की लहरें थिरक रही थीं।

बहुत दिनों के बाद भूकम्प के गर्भ में विलीन हुए पॉम्पिआई नगर के ध्वंसावशेषों की खुदाई हुई तो किले के फाटक पर एक सन्तरी का कंकाल सटा पाया गया। वह सावधान की स्थिति में सीधा खड़ा था। बन्दूक उसके कन्धे पर थी।

इस ककांल को शीशे की अलमारी में सावधानीपूर्वक सजाया गया। उसे उस स्थान पर बने म्यूजियम के फाटक पर लगा दिया गया। अब वह अकेली पाम्पिआई अकेली इटली का गर्व नहीं जीवन की परिभाषा बन चुका था। "जिसने जीवन को कर्तव्यनिष्ठा के रूप में पहचान लिया। वह मृत्युजयी है कालजयी है।" शीशे की अलमारी के ऊपर टँके ये शब्द आज भी जिज्ञासुओं के मनों को स्पन्दित करते हैं, जीवन का नया द्वार खोलते हैं। ✱

वसुधैव कुटुम्बकम् उदात्त भावना विकसित हो

"अत्मवत् सर्व भूतानि यः पश्यति सः पण्डितः ।" के एक सूत्र में मानव कल्याण की समग्र भावना सन्निहित है । यह सारा विश्व एक सूत्र में बँध सकता है यदि सभी लोग इसके अनुसार संसार को एक कुटुम्ब के रूप में देखें और प्रत्येक मनुष्य से वैसे ही प्रेम करें जैसे अपने परिवार के सदस्यों के साथ करते हैं । व्यवहार की सहृदयता हृदय की विशाल भावनाओं से समुन्नत होती है । जितने उच्च विचार और उदार भावनायें होंगी, उतना ही औरों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता भी होगी । चिरस्थायी ममत्व अपनत्व मनुष्य की आंतरिक उत्कृष्टता से ही प्राप्त होता है । वाचालता और कपटपूर्ण व्यवहार से किसी को थोड़ी देर तक अपनी ओर लुभाया जा सकता है, पर स्थिरता का सूत्र तो प्रेम ही है । हमारे अंतःकरण में दूसरों के लिए जितनी अधिक मैत्री की भावना होगी, उतना ही अपना व्यक्तित्व विकसित होगा, उतनी ही आत्म शक्तियाँ विस्तरित होंगी ।

अपने हित की साधना का भाव तो पशु-पक्षियों तक में पाया जाता है । परन्तु अन्य जीवधारियों की तुलना में मनुष्य जीवन में दिव्यता की, दिव्य विकास की सारी संभावनाएँ विद्यमान हैं । अतः इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं हो सकती कि मनुष्य सम्पूर्ण जीवन केवल अपनी ही स्वार्थपूर्ण प्रवंचनाओं में बिता दे । इससे अन्त तक मानवी दिव्य शक्तियाँ प्रसुप्त बनी रहती हैं । प्रेम और आत्मीयता की भावनाओं का विकास नहीं हो पाता । स्वार्थपरता एवं संकीर्णता के कारण मनुष्य का जीवन कितना दुखमय, कितना कठोर हो सकता है, यह सर्व विदित है । वस्तुतः सज्जन तथा सराहनीय वह है जो केवल स्वहित तक सीमित नहीं है । जो उदारतापूर्वक सब के हित की बात सोचता है, वही व्यक्ति श्रेय का अधिकारी है ।

"दि राइट्स आफ मैन " नामक अपनी कृति में सुप्रसिद्ध मनीषी टामस पेन ने कहा है कि 'यह समूचा विश्व मेरा देश है और भलाई करना मेरा धर्म ।' विश्व प्रेम की इस भावना में जो रमणीयता, सौन्दर्य दर्शन तथा मोहकता सन्निहित है, यथार्थ में यही मनुष्य की सच्ची धार्मिक सम्पत्ति हो सकती है । इसी से पुण्य पथ प्रशस्त होता है, इसी से प्रसुप्त क्षमताएँ जाग्रत होती हैं । घृणा और क्रोध, बैर और बदले की भावना से आज हमारा जीवन स्तर गिरता चला जाता है । इससे सामूहिक तौर पर व्यक्ति और समाज दोनों का पतन होता है । समाज में सात्विकता का प्रकाश जिन सद्गुणों से फैलता है, उनकी ओर संकेत करते हुए भगवान कृष्ण ने कहा है–

'अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्रः करुणा एव च ।
निर्ममो निरहंकार सम दुख सुख क्षमी ॥'

अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियों को अद्वैत भावना से देखता है, सबके साथ मैत्री, करुणा, माया-मोह से रहित और नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है । जो सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति क्षमा भाव रखता है , उनके साथ सुख और दुखों में समान रहता है, वही पूर्ण पुरुष है । अर्थात् महानता का लाभ मनुष्य इन्हीं सद्गुणों के आधार पर पाता है ।

स्वामी रामतीर्थ ने विशाल संसार को अपना घर बताते हुए कहा है कि सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य है । इसके बिना मानव जीवन में सरसता नहीं आती । हम जितने अधिक अंशों में समाज के प्रति आत्म विस्तार करते हैं, उसी अनुपात में प्रेम की अन्तः ज्योति हमारे जीवन में मधुरता भरती जाती है । भावनाओं का यह विस्तार मनुष्य को अपने आप से करना होता है । व्यक्तिगत चरित्र निर्माण से यह प्रक्रिया प्रारंभ होती है, धीरे-धीरे परिवार, गांव, समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ उसका सामंजस्य बढ़ता जाता है । इसी क्रम में व्यक्ति को निज का ज्ञान, बौद्धिक विकास और ईश्वर अनुभूति की सिद्धि प्राप्त होती है । यह आत्मयोग ही ब्रह्मज्ञान का सबसे सीधा और सरल रास्ता है ।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु ' की उदात्त भावना ही आत्मा के पूर्ण विस्तार की प्रतीक है । ऐसे व्यक्तियों के सहृदयता, उदारता, कष्ट सहिष्णुता आदि सद्गुण पराकाष्ठा तक जा पहुँचते हैं । उनके लिये अपने पराये का भेद मिट जाता है । वह परमात्मा के प्रकाश में ऐसे असीमत्व का अनुभव करते हैं जिससे उनके सम्पूर्ण दुख अभाव आदि नष्ट हो जाते हैं और प्राणिमात्र की सेवा में सर्वस्व बलिदान करने की महानता जाग्रत होकर धरती को कृतार्थ कर देती है । उदारचेताओं की भाँति हमें भी 'वसुधैव कुटम्बकम् ' की यह भावना विकसित कर पूर्णता के लक्ष्य को पाना चाहिए ।

*

व्यक्तित्व की संरचना एवं विकास के सोपान

व्यक्ति के विविध क्रियाकलाप जिस उर्जा से संचालित होते हैं, उसका स्रोत निज का व्यक्तित्व है। इसकी परिपक्वता अपरिपक्वता के आधार पर ही आचरण व व्यवहार का सुगढ़ या अनगढ़ होना बन पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अद्वितीयता भी है। निज के व्यक्तित्व में ही प्रत्येक की अनन्यता निहित होती है।

मनोविज्ञानी गार्डन वाकर आलपोर्ट ने अपने अध्ययन "पर्सनाल्टी ए साइकोलाजिकल इण्टरप्रिटेशन" में इसी तथ्य की स्वीकारोक्ति की है। उनके अनुसार "व्यक्ति सिर्फ समाज की इकाई भर नहीं है। वह स्वयं अपने में पूर्ण भी है एवम् उसकी अपनी अनन्यता है। यही कारण है कि व्यक्तियों के औसत के रूप में व्यक्तित्व को नहीं समझा जा सकता।"

इसकी संरचना एवम् गठन के सम्बन्ध में विभिन्न मनीषियों ने अपने विचारों का प्रकाशन किया है। मार्टनप्रिंस अपनी कृति "द अन्कांशस" में इसे व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रुझान एवं मूल प्रवृत्तियों का समूह मानते हैं।

मनोविज्ञानी सिगमण्ड फ्रायड का "द एनाटमी आफ मेण्टल पर्सनाल्टी" में कहना है कि मानवीय व्यक्तित्व ईड, इगो, एवम् सुपर इगो का समुच्चय है। उन्होंने अपने इस कथन को समझते हुए बताया है कि ईड मानसिक उर्जा का स्टोर हाउस है। पर इसमें बिखराव है। इगो को इसी के एक विशेष भाग के रूप में स्वीकारते हैं। जो व्यक्ति का बाहरी संसार से सम्बन्ध स्थापित कराने वाला होता है। इन दोनों के परस्पर सम्बन्धों को समझाते हुए उनका कहना है कि "अहं" में क्रियाशील अनुभव अपना विकास भूल प्रवृत्तियों के रूप में करते हैं। आगे वह कहते हैं कि इगो में जहाँ तर्क व सदबुद्धि का स्थान है वही ईड में वासनाओं का। सुपर इगो को वह ईड की एक अभिवृद्धि तथा इगो के उस नवीकरण के रूप में स्वीकारते हैं जो व्यक्ति में नैतिक मर्यादाओं का पोषक है।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उपरोक्त चिन्तकों द्वारा किया गया विवेचन व्यक्ति में जैविक प्राणिक स्तर की प्रभाविकता तथा अपरिपक्व मानसिकता को स्पष्ट करता है। जबकि यह तथ्य मानवेतर प्राणियों में घटित होता है न कि स्वयं मानव पर। इन अध्येयताओं ने व्यक्तित्व की यह व्याख्या 'पर्सनाल्टी के आधार' पर की है। यह पर्सोना से बना है जिसका मतलब है मुखौटा। मुखौटे का मतलब है जो बाहर दिखाई दे। प्रायः जैविक प्राणिक क्रियाकलाप ही बाहर दिखाई देते हैं अतएव इनके द्वारा इन्हीं की प्रधानता स्वीकारना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है।

भारत के प्राचीन ऋषि कहे जाने वाले वैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की संरचना का सांगोपांग अध्ययन किया था। उनके अनुसार इसका केन्द्रीय आयाम "आत्मा" है। इसी के गुण और दिव्यता हमारे व्यवहार और चिन्तन में दिखाई पड़नी चाहिए। इसमें आने वाले अवरोधों बाधाओं को समाप्त करके समूचे जीवन को आत्मा के गुणों से अलंकृत करना ही व्यक्तित्व का विकास है। केन्द्रीय आयाम की अवहेलना कर व्यक्तित्व का ठीक-ठीक विकास सम्भव नहीं।

इस तथ्य को विलियम जेम्स ने न्यूनाधिक रूप से स्वीकारा है। उनके अनुसार व्यक्तित्व के चार सोपान हैं। इसमें पहला सोपान भौतिक है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की बनावट तथा अनुवंशिकता से प्राप्त विशेषताएँ सम्मिलित हैं। इसे उन्होंने मैटेरियल सेल्फ कहा है। दूसरे सोपान को वह सामाजिक व्यक्तित्व या "सोशलसेल्फ" कहते हैं। इसके विकास का आधार व्यावहारिक जीवन में आवश्यक गुणों का भली प्रकार समावेश करके सामाजिक सम्बन्धों का सुरुचिपूर्ण निर्वाह है।

तीसरा सोपान है आध्यात्मिक व्यक्तित्व "स्प्रिचुअल सेल्फ"। जेम्स के अनुसार यह उस समय विकसित होता है जब व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के प्रति जिज्ञासु हो। साथ ही जीवन में एकता समता सुचिता का समावेश करे। चौथा सोपान शुद्ध अहं अथवा प्योर इगो का है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति जब अपने आत्म स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी वस्तुओं में अपनी आत्मा का दर्शन करता है तब वह अपने व्यक्तित्व विकास की पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

जेम्स की इस व्याख्या में महत्वपूर्ण बिन्दु है व्यक्तित्व के लिए पर्सनालिटी के स्थान पर सेल्फ का प्रयोग।

यही कारण है कि वह व्यक्तित्व सरंचना को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट कर सके ।

श्री अरविन्द ने इसे और भी अधिक उत्तम रीति से समझाने की चेष्टा की है । उनके अनुसार व्यक्तित्व विकास के सोपान चार न होकर छः हैं । इनको उन्होंने भौतिक प्राणिक, बौद्धिक, चैत्य, आध्यात्मिक एवम् अतिमानसिक कहा । इनमें प्रत्येक का अपना गुण है । भौतिक का गुण है–सफलता । प्राण का गुण है क्रियाशीलता । बौद्धिक स्तर का गुण है- चिन्तन की प्रखरता । चैत्य का गुण है-अन्तराल की पवित्रता । आध्यात्मिक स्तर का गुण है- क्षुद्रता से उबर कर महानता की ओर बढ़ चलने की अभीप्सा, तथा अतिमानसिक स्तर का गुण है, प्रत्यावर्तन, महानता, में स्वराट का विराट में संकीर्णता का विस्तीर्णता में, स्वार्थपरता का उत्सर्ग में परिवर्तन । इन सभी स्तरों के गुणों का समुच्चय ही यथार्थ में व्यक्तित्व है । इन्हें जीवनक्रम में भली प्रकार व्यवहार में लाना ही विकसित व्यक्तित्व का लक्षण है ।

इस तथ्य को भली प्रकार समझ पाने के बाद ही यह सोचना बन पड़ता है कि कहाँ किस सुधार की जरूरत है । किस स्तर से हम अभी परिचित नहीं हैं अथवा कौन से गुणों को जीवन में समुचित स्थान नहीं मिल पा रहा है । इसे ढूँढ़ना और विकसित करना और भली प्रकार निर्वाह करने की प्रक्रिया को आवश्यक कर्तव्य कर्म कहा जा सकता है ।

इसे उपेक्षित छोड़ देने के कारण ही जीवन में विकृतियों असफलताओं परेशानियों की भरमार दिखाई देती है । विभिन्न स्तरों में जो स्तर कमजोर होगा, जहाँ भी गुणों का अभाव होगा वहीं परेशानी समस्या कठिनाई आ खड़ी होगी । इनके निवारण का सही और सटीक उपाय है उस स्तर के आवश्यक गुणों का विकास ।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो. एस. एन. दास गुप्त अपनी रचना "हिन्दू मिस्टीसिजम " में संसार को व्यक्तित्व निर्माण की प्रयोगशाला मानते हैं । उनके अनुसार इसे ही जीवन का लक्ष्य समझा जा सकता है । दास गुप्त के अनुसार संसार तथा समाजिक परिवेश नित्यनिरन्तर बदलती परिस्थितियाँ, रोजमर्रा की समस्याएँ, बाधा व्यक्तिरेक इस काम में हमारी सहायता करते हैं । इनमें से प्रत्येक स्थिति हमें अपने अन्दर झाँकने को बाध्य करती है , साथ ही प्रेरणा प्रदान करती है कि आवश्यक कमी को पूरा किया जाय ।

यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक एरिक फ्राम व्यक्तित्व विकास की साधना को गुणों के विकास की साधना का नाम देते हैं । बात भी सही है न्यूनाधिक रूप से दोनों एक दूसरे के पर्याय ही हैं । इस साधना हेतु श्री अरविन्द ने दो चरण बताए हैं । प्रथम शुद्ध अभीप्सा अर्थात् वही व्यक्ति जीवन में परम शान्ति आनन्द एवम् प्रकाश पा सकता है जो इसके लिए आवश्यक गुण दया, करुणा, ममता, सेवा–सहकार जैसे सद्गुणों को चाहे ।

दूसरे चरण के रूप में वह कहते हैं कि हमें निम्न एवम् अवांछनीय प्रवृत्तियों दोष दुर्गुणों को त्यागना होगा । वह स्पष्ट करते हैं कि जब तक कोई भी आदमी निम्नता की ओर अपना झुकाव रखता है तब तक चेतना के श्रेष्ठतर पक्ष की ओर अग्रसर नहीं होता है । अतएव उन्नत श्रेष्ठ सफल जीवनक्रम के लिए अच्छा यही है कि जीवन निर्माण के इन दोनों चरणों की पूर्ति में उत्साहपूर्वक जुट पड़ा जाय । ऐसा करने से समूचा जीवन स्वयमेव प्रगति की राह पर वेगपूर्वक बढ़ता चला जाएगा ।

गाँधी जी अपने को गरीब देश वासियों के समतुल्य मानते थे पर अपने लिए खर्च का जब भी प्रसंग आता वे गरीब स्तर के लोगों जैसा निर्वाह का चयन करते ।

आधी धोती पहनते आधी ओढ़ते थे । सरकंडे की कलम से लिखते थे और चटाई पर सोते थे । कभी–कभी पत्नी के साथ गेहूँ भी पीसते थे । चरखा तो वे नित्य ही चलाते थे । इस मितव्ययता ने उनकी महानता में चार चाँद लगाये । इस रहस्य को वैभव वाले कहाँ समझें ?

व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण परिष्कार ही वस्तुतः सही अर्थों में आध्यात्मिक प्रगति का प्रमुख चिन्ह है । जो जितना इस दिशा में प्रगति कर पाता है , वह सही अर्थों में उतनी ही निज की, समाज के लिए उपयोगिता प्रमाणित करता है । सिद्धि, विभूति जो भी कुछ है इसी रूप में परिलक्षित होती है । आत्मावलोकन व आत्म निर्माण विकास की प्रक्रिया द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिष्कार हर किसी के लिए संभव है व यह राजमार्ग सभी के लिए खुला है । *

खोटो५८८

सच्चा पाण्डित्य

वितस्ता के किनारे फैले आश्रम के प्रांगण में आज कुछ अतिरिक्त जन समूह दीख रहा था । पर थे सभी नियंत्रित अनुशासित और पंक्तिबद्ध । सभी ऋषि तुल्य आचार्य बन्धुदत्त की दीक्षान्त वक्तृता सुनने के लिए आतुर थे । उन्होंने सभी को सम्बोधित कर बोलना शुरू किया "इन दिनों व्यक्ति और समाज अनेक प्रकार की कठिनाइयों, समस्याओं और चिन्ताओं आशंकाओं से ग्रस्त हो विपन्न हैं । सामान्य जन रुग्णता अशिक्षा, दरिद्रता, आदि के कुचक्र में पिस रहा है । पर विशिष्ट कहे जाने वालों को क्या उलझनें और विपत्तियाँ कम हैरान कर रही हैं ? यह सब क्यों ? साधन सुविधाओं के बीच यह अभावग्रस्तता कहाँ से टपक पड़ी ? इसका एक ही कारण है बुद्धिवाद के मेघों से हो रही अनेकानेक कुचक्रों की मूसलाधार वारिश । अज्ञान का धुँधलका और कुचक्रों की झड़ी के कारण उपजा कष्टदायक भटकाव हर किसी को पथ भूले बन्जारे की तरह संत्रस्त किए है ।"

कुछ रुक कर उन्होंने फिर कहना शुरू किया । "आज के दिन मानव गढ़ने की यह प्रयोगशाला अपने निरन्तर के परिश्रम से गढ़े गए कुछ नर रत्नों को समाज को उसकी सामयिक समस्याओं के निदान हेतु समर्पित कर रही है । हो रही सारी विडम्बनाओं का एक ही कारण है बुद्धि विभ्रम अथवा आस्था संकट और इसका एक ही समाधान है सद्विचार । सत्चिंतन और सत्कर्म में निष्णात् ये नर रत्न अपने विवेक और कौशल से लोकमानस को परिष्कृत करने में जुटेंगे ।" इतना कहकर उन्होंने अपनी वाणी को विराम दिया । उपस्थित विद्यार्थियों के समूह ने एक-एक करके आचार्य को प्रणाम करना शुरू किया । सबसे अन्त में एक दुबला-पतला किन्तु तेजस्वी युवक आया ।

प्रणाम करने के अनन्तर उनने उसे इशारे से रोका, और बोले "वत्स कुमार जीव । तुम्हारी उच्चस्तरीय प्रतिभा के अनुरूप तुम पर विशेष जिम्मेदारी है ।"

"क्या ?" युवक ने विनम्रतापूर्वक पूछा ।

"यद्यपि तुम बचपन से कठिनाइयों, अभावों , असुविधाओं में रहे हो । तुमने अनेकों दुःख भोगे तकलीफें झेली हैं । सम्भव है तुम्हारे मन में आए कि प्रतिभा और अर्जित ज्ञान से सुविधा बटोरी और सम्पन्नता कमाई जाय । उस समय समूची मानव जाति को देखना । उसकी पीड़ा कराहट को देखना अनुभव करना । तुम्हारे अपने दुःख पहाड़ के सामने राई जैसे नगण्य लगेंगे । ध्यान रखना, सुविधा, सम्पन्नता की परिस्थितियाँ मनुष्य को सुकुमार तथा विलासी बनाती हैं । प्रमाद और आलस्य उसके मानसिक मित्र बन जाते हैं । वह और किसी योग्य नहीं रहता । तुम्हारी योग्यता बनी रहे विकसित हो फले फूले । इसलिए उसे सर्वहित में लगाना ।"

युवक ने सिर उठाया और बोला "आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरी सामर्थ्य का प्रत्येक कण, जीवन का प्रत्येक क्षण मानव जाति के लिए होगा । आप मेरे कथन पर विश्वास करें ।"

"मुझे विश्वास है ।" "आपकी गुरुदक्षिणा ।"

"यदि मानव जाति को आस्था संकट से छुड़ाने में जुट सके तो समझना दक्षिणा दे दी । अपने को किसी क्षेत्र विशेष में मत बाँधना । समूचा विश्व तुम्हारा घर है ।"

"आपका आशीर्वाद चाहिए ।"

"आशीर्वाद है विचार क्रान्ति के अग्रदूत बनो ।"

दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा । दोनों की आँखें डबडबा आईं । शिष्य ने आचार्य के चरणों में प्रणाम कर धीरे-धीरे द्वार की ओर कदम बढ़ाए । उसका गन्तव्य था कर्म क्षेत्र । विचार क्रान्ति को समर्पित होने वाले कुमार जीव चौथी शताब्दी में काश्मीर के कूची इलाके में पैदा हुए । पिता कुमारायण उसी रियासत में दीवान थे । उनकी आत्मा अधिक समय तक यह स्वीकार न कर सकी कि इसी प्रकार धन कमाने में दुर्लभ मानव जीवन समाप्त कर दिया जाय । अतएव जन साधारण में ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए अन्तः प्रेरणा से दीवानी का पद छोड़ दिया । पर कुमार जीव के जन्म के कुछ ही दिनों बाद वह चल बसे । माता 'देवी ' मेहनत मजदूरी करके अपनी और बालक की जीवन नौका खे रही थी । बड़े होने पर बालक भी सहायक बना । बालक शिक्षित कैसे हो ? उसमें जीवन बोध कैसे जगे ? इन सवालों को लेकर माँ परेशान थी ।

एक दिन उसे लेकर मीलों की कष्ट साध्य यात्रा

करते आचार्य बन्धुदत्त के आश्रम में जा पहुँची। वितस्ता नदी के किनारे बना यह आश्रम काश्मीर ही क्यों, समूचे भारत में अपनी गुणवत्ता की धाक जमाए था। आचार्य इसे 'मानव जीवन की प्रयोगशाला' कहते और सचमुच वह स्वयं के तथा सहयोगियों के सम्मिलित प्रयत्नों से अन्दर समाई विभूतियों को उभारते व्यक्तित्व को सर्वांगीण बनाते। क्षमताओं के सही उपयोग का मर्म सुझाते। जीवन विद्या के इस आचार्य ने बालक की अनूठी प्रतिभा को पहचाना और गढ़ने में जुट गए। परिणाम स्वरूप कुमार जीव आचार्य की अनोखी कलाकृति के रूप में सामने आया। अध्ययन की समाप्ति तक माँ भी पंच भौतिक शरीर को त्याग चुकी थी।

सद्ज्ञान के प्रसार के दौरान उनकी मित्रता काशगर राज के एक प्रतिष्ठित विद्वान बुद्धियश से हुई। दोनों विद्वानों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। उनकी वर्तमान तथा भावी गतिविधियों एवं कार्यक्रमों को जानने के बाद बुद्धियश ने कुमारजीव से काशगर में रुक जाने को कहा।

कुमार जीव ने पूछा "क्यों?"

"यहाँ रहो सुन्दरकन्यासे तुम्हारा विवाह करा देंगे। यहाँ का राजा विद्वानों का बड़ा आदर करता है मेरा उस पर प्रभाव है। धन-मान सुख सभी कुछ एक साथ मिलेंगे।"

"गुरु आदेश से विवश हूँ मित्र। इस जीवन पर अब उन्हीं का अधिकार है और यह उन्हीं के काम में लगेगा।" "भावुकता में मत पड़ो। सभी का अपना-अपना प्रारब्ध है। बचपन से तुमने कष्ट ही कष्ट उठाए हैं। अब सुख का समय आया है तो गुरु का आदेश। विद्वान होकर क्यों मूर्ख बनते हो?"

ज्ञान यज्ञ के इस महान ऋत्विज को मित्र का यह प्रस्ताव ठीक न लगा। आक्रोश को दबाकर क्षीण मुसकान के साथ कहा "समझ का फेर है मित्र जिसे तुम विद्वान होना कहते हो, उसे मैं निष्ठुरता कहता हूँ। ऐसा पाण्डित्य तो ठगों, चालाकों में भी होता है। ये भी तमाम तरह की युक्तियाँ भिड़ा कर दूसरे का सब कुछ हड़प लेते हैं। मेरे लिए विद्या का अर्थ है, इन्सान की जिन्दगी इन्सान के लिए है, इस बात का शिक्षण, इसी जीवन जीने की कुशलता का बोध कराने की जिम्मेदारी गुरुदेव ने मेरे कन्धों पर डाली है। मैं इससे रंच मात्र नहीं हट सकता।"

कुमार जीव का उत्तर सुन बुद्धियश हतप्रभ रह गया। विद्या विस्तार का यह विलक्षण मर्म उसे सूझा ही न था। इस उत्तर ने उसकी आखें खोल दीं। वह कुमार जीव की महानता के समक्ष नतमस्तक हो गया। धीरे से बोला "मैं आचार्य बंधुदत्त के नाम पर कलंक बन रहा था, तुमने मुझे उबार लिया। मैं स्वयं भी भरसक तुम्हारा सहयोग करूँगा।"

अपने विद्या विस्तार के क्रम में कुमार जीव भारत की सीमाएँ लांघ कर चीन जा पहुँचा तथा चीनी भाषा सीखी। वहाँ उसने प्रवचनों वार्ताओं प्रशिक्षण के द्वारा जन सामान्य को जीवन जीना सिखाने का क्रम चलाया। वहाँ उसने भारत के विचारपूर्ण साहित्य का चीनी भाषा में अनुवाद किया। तकरीबन सौ ग्रन्थों के अनुवाद के साथ ताओ धर्म के आलोक में भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के प्रसार हेतु मौलिक ग्रन्थ रचे।

इसी बीच बुद्धियश भी अपने मित्र के पास आ पहुँचे। अब तो एक से दो हो गए। दोनों मित्रों ने मिलकर अनेकों सहयोगी तैयार किये। अब तक उनके कार्य का आदर किया जाने लगा था। राज्य की ओर से अनेकों सुविधाएँ भी दी गई पर उन्होंने उनका तिल भर भी उपयोग नहीं किया और भगवान तथागत के आदर्शों के अनुरूप सरल सादा जीवन जीते रहे। जीवन के अंतिम क्षणों तक वह क्रियाशील रहे। उनका एक ही संदेश था जीवन विद्या में निष्णात ही विद्या प्रसार कर सकते हैं। उनके इस संदेश को सुन अनेकों सचल प्रकाश दीप बने। अनेकों बुझे हुए दीपों को जलाने के लिए यही परम्परा आज फिर जाग्रत जीवन्त हो, यही युग की माँग है। ✲

ईश्वरचंद विद्यासागर ने बड़ी कठिनाइयों में रहते हुए विद्याध्ययन किया था। उन्हें अन्य निर्धन छात्रों की कठिनाइयों का भी ध्यान सदा बना रहा। उनकी सहायता के लिए सदा प्रयत्नशील रहे।

उन्हें ५००/- रुपये मासिक वेतन मिलता था। उसमें से मात्र ५०/- में अपना परिवार खर्च चलाते और शेष पैसे निर्धन छात्रों की सहायता के लिए खर्च करते रहते। वे विद्यासागर लिखे और करुणा सागर कहे जाते थे।

सुधार का शुभारम्भ अपने आप से

राह के काँटे कंकड़ देख कर चलना और उनसे बचते हुए पैर रखना ही उचित है। इसे सतर्कता और समझदारी कहा जायगा, किन्तु यह नहीं मान बैठना चाहिए कि हर राह सीमेन्ट से बनी साफ, सुथरी है। हर मार्ग पर रोड़े हैं, उन्हें पूरी तरह हटाया नहीं जा सकता। साथ ही यह भी आवश्यक है कि पैरों को ठोकरों से, चुभन से बचाया जाय, अन्यथा पैर घायल हो जायँगे और नियत स्थान तक पहुँचने से पहले ही मरहम पट्टी की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

इस संसार में कुछ अपवाद जैसे देव मानवों को छोड़कर ऐसे लोग कम है जिनके गुण, कर्म, स्वभाव में कोई–न–कोई कुछ –न–कुछ त्रुटि न हो। उसे देखते ही चौंक पड़ना और उनके समूचे व्यक्तित्व को घटिया मान बैठना उचित नहीं। तब क्या उन दोषों को सहन किया जाय? उनकी उपेक्षा की जाय? अपने को उनका समर्थक, सहायक बना लिया जाय? नहीं, इस सीमा तक दर गुजर करने की जरूरत नहीं है। जहाँ तक अपना वश चले दुर्गुणों को घटाया और मिटाया जाना चाहिए। दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना चाहिए, पर इसके लिए आतुर होने की, अतिवादी बनने की जरूरत नहीं है। हमारी दृष्टि मध्यवर्ती होनी चाहिए।

दुष्प्रवृत्तियों से बचना भी आवश्यक है और अन्यान्यों के दुर्गुण अपने ऊपर आक्रमण न करने पायें, इससे सतर्क भी रहना चाहिए, किन्तु इतने पर भी लोगों में अवांछनीयताएँ बनी ही रहें तो उन्हें सुधारने के अतिरिक्त सहन करने की तालमेल बिठाने की भी चेष्टा करनी चाहिए।

सब मनुष्य पूर्णतया निर्दोष बन जायँगे और देव मानवों जैसा शुद्ध, पवित्र जीवन जियेंगे, इसकी आशा करना व्यर्थ है। संचित कुसंस्कार समय–समय पर उभरते रहते हैं और कुप्रचलनों का प्रभाव पड़ता है। इन दबावों का जो सामना नहीं कर पाते, वे पतन, पराभव की ओर लुढ़क पड़ते हैं। कुछ समय अभ्यास में आते रहने के उपरान्त अवांछनीयताएँ जड़ जमा लेती हैं और स्वभाव के साथ इतनी घुल जाती हैं कि अभ्यस्त को यह पता तक नहीं चलता कि उसके क्रिया–कलाप में, चिन्तन, चरित्र में कितने दोष दुर्गुण समाये हैं। वह अपने आपको निर्दोष ही समझता रहता है और एक बारगी उस ओर ध्यान आकर्षित करने या भर्त्सना के कटु शब्दों में समीक्षा कर देने पर तिलमिला जाता है और सुधार प्रयास को निन्दा या शत्रुता समझने लगता है। ऐसी स्थिति बन जाने पर बात बनती नहीं, बिगड़ती है। सुधार की जो गुंजायश थी वह भी हाथ से चली जाती है। दोष प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है और दोषी चुनौती देने लगता है कि हम अपनी जगह पर सही हैं, जिसमें दम–खम हो बदलने का प्रयास पूरा करके दिखाये। दुराग्रह तक स्थिति के जा पहुँचने पर जो सुधार संभावना थी, वह भी हाथ से चली जाती है। इस प्रकार समीक्षा का, सुधार चेष्टा का प्रयत्न ही निष्फल हो जाता है।

> *संत विनोबा प्रातः टहलने के लिए तीन मील पैदल जाया करते थे। कंधे पर फावड़ा रखे रहते। ताकि रास्ते में जहाँ भी अस्तव्यस्तता या गंदगी हो उसे साफ करते चलें।*
>
> *एक किसान ने पूछा आप यह फावड़ा रोज लाद कर क्यों आते हैं। उनने कहा मेरा प्रथम काम सफाई है। इस कार्य के लिए आवश्यक उपकरण तो चाहिए ही। सिपाही भी तो कंधे पर बन्दूक रखकर चलते हैं।*

जो दोष अपने से सीधे टकराते हैं उन्हें बिना सन्तुलन खोये, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि बचकर निकलने का कोई रास्ता निकल सके। विग्रह प्रायः गलत फहमियों के कारण होते हैं। यदि कठिनाई और समाधान निकल आने पर उनकी सज्जनता प्रख्यात होने की बात को ढंग से समझाया जा सके, तो स्थायी न सही तात्कालिक हल तो निकल ही सकता है। उत्तेजना शान्त होने पर बात टल जाती है और मूड बदल जाता है। तब दूसरे को सम्मान देते हुए समाधान की चर्चा कई ओर से चलानी चाहिए।

आमने-सामने के व्यवहार में कटुता आ गई हो तो किसी बिचौलिए को मिठास भरी भूमिका निभानी चाहिए। साथ ही यह भी बताना चाहिए कि बात बढ़ने पर दोनों पक्षों को किन-किन संकटों का, उलझनों का सामना करना पड़ सकता है। यदि समझौते पर पहुँचने की एक पक्ष की सच्ची इच्छा हो तो समयानुसार दूसरे पक्ष को भी झुकना पड़ता है। तनाव तब बढ़ता है जब दोनों पक्ष प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर चलें और अपनी हेटी न होने देने की बात पर अड़े रहें। परस्पर वार्तालाप न करना और गुत्थी को हल करने के लिए चर्चा न चलाना भी ऐसा रुख है जो टकराव को रोकता नहीं, वरन् बढ़ाता है।

अन्यान्यों के सुधार का यह तरीका अच्छा है कि उन्हें एकान्त में अपनी सद्भावना का स्मरण दिलाते हुए इस प्रकार समझाया जाय कि दोषों के बने रहने पर होने वाली हानियों और छोड़ देने पर उत्पन्न होने वाली सुविधाओं को तर्क-उदाहरण समेत समझाया जाय। मनुष्य में हठवादिता और अहमन्यता का अंश तो बढ़ा-चढ़ा अवश्य होता है, पर सज्जनता, मधुरता और दूरदर्शिता में वह विशेषता है कि वह दुराग्रह को भी नरम कर सकती है।

लोगों के दोष उन पर हावी होते हैं, जो स्वयं दोषी रहते हैं। क्रोधी से क्रोधी टकराता है। एक पक्ष विनम्र हो तो दूसरे की आवेशग्रस्तता भी कारगर नहीं होती। एक हाथ से ताली नहीं बजती, इसलिए अपने आपे को उद्दंडता और कायरता दोनों से बचाना चाहिए। कायरता भी ऐसा पक्ष है जिसे देखकर अनाचारियों का हौसला चढ़ दौड़ने के लिए उछलता है। सहायक या साधनों की कमी रहने पर भी कोई मनस्वी व्यक्ति एकाकी भी तन कर खड़ा हो सकता है और आक्रान्ताओं की आधी हिम्मत पस्त कर सकता है। विग्रह से बचने के लिए सरल समाधान का उपाय खोजना बुद्धिमानी है, पर उस सीमा तक नरम भी न पड़ा जाय जिसे कमजोरी समझा जाय। शारीरिक कमजोरी की तरह मानसिक दुर्बलता भी उतनी ही कष्ट कर है। कमजोर शरीर पर बीमारियों का अनायास ही आक्रमण होता है। इसी प्रकार जो मन से दुर्बल है उन पर अनाचारियों को आक्रमण करने के लिए मन चलता है। हम दुष्ट तो न बनें, पर दुष्टता सहन भी न करें। सज्जनता, नम्रता और मधुरता में इतनी सामर्थ्य है कि वह अनाचार को निरस्त भी करती है और निरुत्साहित भी।

सुधार कार्य में यदि वस्तुतः अपनी रुचि हो तो उसे अपने आपे से आरंभ करना अधिक सरल है। दूसरे लोग कहना न मानें, यह हो सकता है, किन्तु अपना मन तो समझाया ही जा सकता है। अपनी आदतों पर तो अंकुश लगाया ही जा सकता है। अपने ऊपर संयम बरतने के लिए दबाव डाला जा सकता है। यदि आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास का चतुर्विधि प्रयास निरन्तर जारी रहे तो उस चिन्तन-मनन का प्रभाव अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करने की दृष्टि में बहुत अंशों में सफल हो सकता है।

भेड़िया दुष्ट स्वभाव का था। भलमनसाहत उसे आती ही न थी। वह सभी साथियों से बैर भाव रखता था।

एक दिन भेड़िये के गले में किसी जानवर की हड्डी अटक गई। दम घुटने लगी। प्राण निकलने लगे तो दौड़ कर सारस के पास पहुँचा और बोला। तुम्हारे लिए जीवन भर अहसान करता रहूँगा। तुम अपनी लम्बी चोंच से मेरे गले में फँसी हुई हड्डी निकाल दो।

सारस को दया आ गई उसने वैसा ही किया हड्डी निकाल दी।

बहुत दिन बाद सारस को कुछ काम पड़ा। वह सहायता के लिए भेड़िये के पास गया और पिछले अहसान की याद दिलाई।

भेड़िये ने कहा तुम्हारी गरदन मेरे मुँह में जाने के बाद भी साबुत निकल आई वही अहसान भी क्या कम था? सारस ने अपने परिवार के सभी लोगों को बुलाकर समझाया कि दुष्ट की सहायता करके उससे किसी प्रकार के सद्व्यहार की आशा नहीं करनी चाहिए।

एक पक्षीय कटुता या टकराहट टिकती नहीं। आग को ईंधन न मिले तो उसे देर सबेर में बुझ ही जाना पड़ेगा। सम्बन्धित लोगों में से सभी को सज्जन बनाना कठिन है। उनकी दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति बनी भी रह सकती है, किन्तु यदि अपना पक्ष शालीनता से भर लिया गया है तो टकराने की संभावना कहीं अधिक घट जाती है। पैरों में जूते पहन लेने पर काँटे चुभने की संभावना चली जाती है। अपने निजी व्यक्तित्व को हमें इतना शालीन, प्रामाणिक एवं प्रखर बनाना चाहिए कि अन्यान्यों के दोष दुर्गुणों को निरखने परखने, सुलटाने एवं सुधारने की आवश्यकता स्वयमेव पूरी होती चले।

*

सूक्ष्म जगत के परिशोधन–परिष्कार हेतु अध्यात्म उपचार

यज्ञ को सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला बताया गया है । पर्जन्य एवं दिव्य वातावरण की उत्पत्ति का मूल आधार यज्ञ ही है । युदुर्वेद ३/५३ में ऋषि कहते हैं "हे यज्ञ । तू निश्चय ही कल्याणकारी है । स्वयंभू परमेश्वर तेरे पिता हैं । तेरे लिए नमस्कार है । तू हमारी रक्षा कर । दीर्घ जीवन, उत्तम अन्न, भरपूर जीवनीशक्ति ऐश्वर्य , समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल, पराक्रम के लिए हम श्रद्धा विश्वासपूर्वक तेरा सेवन करते हैं ।"

प्राचीनकाल में ऋषियों ने यज्ञ के इन लाभों को भली प्रकार समझा था , इसलिए वे उसे लोक–कल्याण का अतीव आवश्यक कार्य समझकर अपने जीवन का एक तिहाई समय यज्ञों के आयोजन में लगाते थे । स्वयं यज्ञ करना और दूसरों से यज्ञ कराना उनका प्रधान कर्म था । जब घर–घर में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी, तब यह भारत भूमि स्वर्ण–सम्पदाओं की स्वामिनी एवं नर–रत्नों की खान थी, साथ ही समूचे विश्व में इसी कारण सुख–शान्ति का खुशहाली का वातावरण था । पर आज यज्ञ को त्याग देने का हो परिणाम है कि सर्वत्र पर्यावरण ही विषाक्त नहीं हुआ, वरन् सनकियों, उन्मादियों के कारण विश्व –वसुन्धरा का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है ।मानवी सभ्यता के विलुप्त हो जाने का अंदेशा है ।

विश्व का विचार परक वातावरण जब तक उच्यस्तरीय रहता है, तब तक सतयुगी परिस्थितियाँ बनी रहती हैं । पर जब उसमें दुर्बुद्धिजन्य दुर्गुणों का प्रभाव भरने लगता है तो सर्व साधारण में उद्दंडता, आवेश, अनाचार का समावेश होने लगता है उनकी परिणति शोकसंताप के रूप में सामने आती है । थोड़े लोग अनेकों को अपने साथ घसीट ले जाते हैं और शीतयुद्ध, गृहयुद्ध, महायुद्ध का घटाटोप जैसा परिणाम बनकर सामने आता है । विश्व के राजनैतिक क्षितिज पर इन दिनों प्रत्यक्ष देखा भी जा सकता है । यह सूक्ष्म जगत का प्रदूषण है जिसे वायुमंडलीय प्रदूषण से भी अधिक भयंकर माना जा सकता है ।

वायु मंडल की विषाक्तता रोग फैलाती और दुर्भिक्ष लाती है, किन्तु वातावरण में दुष्टता और भ्रष्टता के तत्व भर जाने से प्रकृति कुपित होकर ऐसे कहर बरसाती है जिसे मनुष्यकृत 'कत्लेआम' से भी अधिक भयंकर समझा जा सकता है । बाढ़, भूकंप, महामारी , उपलवृष्टि, ईति–भीति, दुर्भिक्ष, अपराध, युद्ध जैसी विपत्तियाँ टूटती हैं और उस सामूहिक विनाश का प्रकारान्तर से अगणित जनों पर दुष्प्रभाव पड़ता है । सूखे के साथ गीला भी जलता है । गेहूँ के साथ घुन भी पिसता है । अनीति करने वाले की तरह उसे रोकने का पुरुषार्थ न करने वाला भी कायरता एवं उपेक्षा का व्यक्तिगत स्वार्थपरता में ही संलग्न रहने का दोषी समझा जाता है और कुपित प्रकृति व्यापक क्रोध बरसाती और एक ही डंडे से सबको हाँकती है ।

इन दिनों परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिन्हें विकृत मनःस्थिति की देन माना जा सकता है । सभी जानते हैं कि इन दिनों कुमार्गगामिता अपनी चरम सीमा पर चल रही है । अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सशक्त राष्ट्र छोटे एवं निर्बल देशों को अपने अधीन कर मनमाने ढंग से उनका शोषण करने को समुद्यत हैं । बढ़ते हुए तनाव एवं अपराधी दुष्प्रवृत्ति का विस्फोट इस प्रकार हो रहा है कि वह कभी भी अणु युद्ध तथा असाध्य महामारियों के रूप में फूट सकता है । विज्ञान और बुद्धिवाद का दुरुपयोग ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जिससे मानवी सत्ता और सभ्यता का अंत होने जैसी स्थिति आ पहुँचे ।

ऐसे भयंकर समय में भौतिक उपाय–उपचार तो शासकों, धनाध्यक्षों एवं राजनयिकों द्वारा अपने–अपने ढंग से चल ही रहे हैं । अध्यात्म क्षेत्र को भी इन दिनों दिव्य प्रतिकारों का आश्रय लेना चाहिए और व्यक्ति तथा समाज को मानवी सभ्यता को नरक जैसे दलदल में फँसने से पूर्व ही उबारना चाहिए । इसके लिए सर्वसुलभ उपाय–उपचार यज्ञ विधा को पुनर्जीवित करने के स्तर पर प्रयास करना चाहिए । इसी आधार पर संव्याप्त विषाक्तता का शमन और वातावरण का परिशोधन हो सकेगा । तपस्वियों के द्वारा किये गये ऐसे आयोजन अन्तरिक्ष में ऐसी उथल–पुथल कर सकते हैं जिससे विनाश की संभावनायें निरस्त हो जायँ और विकास के नये आयाम आरंभ हो सकें ।

इस संदर्भ में युगान्तरीय चेतना ने पुरातन यज्ञीय परम्परा को पुनर्जीवित किया है और व्यापक स्तर पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक यज्ञ आयोजनों की बहु आयामी श्रृंखला चलाई है । वायु प्रदूषण का निराकरण और वातावरण का परिमार्जन यज्ञ की अग्निहोत्र प्रक्रिया से हो सकता है । इसके लिए नवनिर्माण आन्दोलनों में गायत्री यज्ञों एवं दीपयज्ञों तथा युगनिर्माण सम्मेलनों के ज्ञान यज्ञों का समावेश किया जाता रहा है । परिजनों के मिलजुल कर श्रम सहयोग से यह आयोजन बड़ी सरलता से और स्वल्प लागत में सम्पन्न हो जाते हैं । जहाँ सुव्यवस्थित अग्निहोत्र की सुविधा नहीं है, वहाँ घृत दीप एवं धूपवत्ती जलाकर गायत्री महामंत्र का २४ बार उच्चारण करने से भी अति संक्षिप्त यज्ञ हो जाता है । वस्तुतः इन पुरातन महान प्रचलनों को सर्व सुलभ व्यापक एवं पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए इसे आन्दोलनों के रूप में अग्रगामी बनाया गया है ।

अदृश्य वातावरण को बदलने एवं वायुमंडल में भरी जा रही विषाक्तता के निराकरण के लिए यज्ञ प्रक्रिया को एक आन्दोलन का रूप देने के लिए बड़े आयोजनों वाली खर्चीली व्यवस्था के स्थान पर ऐसे सरल विधान निर्धारित किये गये हैं जिसे निर्धन वर्ग के लोग भी अति सस्ते में इस प्रक्रिया की पूर्ति कर सकें । हवन सामग्री उपलब्ध न हो तो गुड़ और घी के सम्मिश्रण से बनी हुई छोटी-छोटी गोलियों को शाकल्य मान कर हवन किया जा सकता है । उसमें चन्दन चूरा जैसा सुगन्धित द्रव्य भी मिलाया जा सकता है । शर्करा और घृत का अग्निहोत्र में विशेष महत्व है , पर इन्हें शुद्ध स्थिति में ही लेना चाहिए । गौघृत मिलना अब सरल नहीं है । मिलावट की सब ओर भरमार है । इसलिए गाय के दूध को गुड़ में मिलाकर ऐसी सामग्री बन सकती है जो सर्व सुलभ हो और जिसके लिए बहुत पैसा खर्च न करना पड़े । वनस्पतियों की बनी शुद्ध हवन सामग्री मिल सके तो और भी अच्छा है ।

पर इन दिनों शुद्ध घी और शुद्ध सामग्री मिलना कठिन ही है । बनौषधियों से विनिर्मित हवन सामग्री भी हर जगह उपलब्ध नहीं । ऐसी दशा में काला तिल हवन के काम आ सकता है । घी आरंभिक आज्याहुति होम के सात और अंत की तीन स्विष्टिकृति , पूर्णाहुति और वसोधारा के निमित्त काम में लाया जा सकता है । तिल में थोड़ा सा घी चिकनाई के लिए प्रयुक्त करने से काम चल जाता है । एक किलो गाय के दूध से निकाले गये मक्खन से प्रायः एक महीने का काम चल जाता है । सभी सामग्री शुद्ध रूप में उपलब्ध न हो तो काला तिल, चंदन चूरा गुड़ या शर्करा , घी आदि मिलाकर भी सस्ता और शुद्ध शाकल्य बन सकता है । एक पेटी में हवन में काम आने वाली सभी वस्तुएँ सुरक्षित यथास्थान रखी रहें तो नित्य यज्ञ में कोई असुविधा नहीं होती है ।

कई जगह कमरों में भी धुआँ करने का निषेध है । वहाँ गैस या बिजली से ही भोजन तक बनता है । लकड़ी जलने से वे हानिकारक धुआँ होने की मान्यता रखते हैं । वहाँ उत्सवों पर धार्मिक प्रयोजन के लिए अगरबत्ती, धूपबत्ती मोमबत्ती भर जलाने की छूट है । ऐसे स्थानों के लिए एक थाली में चंदन चूरे की पाँच अगरबत्ती तथा एक घी का दीपक जला लेने से प्रयोजन की पूर्ति हो जाती है । हवन सामग्री की पूर्ति अगरबत्ती से और घी होमने की आवश्यकता दीपक जलाने से पूरी हो जाती है । चौबीस बार उपस्थित लोग मिलजुल कर सामूहिक रूप से एक साथ एक मन और भावना से गायत्री मंत्र का उच्चारण कर लें तो उस उच्चारण को आहुति मंत्र समझा जा सकता है । जिन कमरों में कीमती कालीन बिछे हुए हैं और आग की चिनगारी से किसी प्रकार के नुकसान की आशंका है, वहाँ यह विधि बिना जोखिम की है । जहाँ मोजा उतारना असभ्यता में गिना जाता है वहाँ गायत्री मंत्र का मौन मानसिक जप हो सकता है और उपार्जित ऊर्जा को अदृश्य के परिशोधन हेतु बिखेर देने की भावना की जा सकती है । मौन जप किसी भी स्थिति में हो सकता है । उसके लिए स्नान या हाथ पैर धोने की भी अड़चन नहीं है ।

पदार्थ यजन के साथ-साथ मंत्रोच्चार की समस्वरता, प्रयोक्ताओं की प्रखर पवित्रता एवं प्रचण्ड भावना का सम्मिश्रण होने से ही यज्ञीय विधा उस स्थिति तक पहुँचती है जिसमें प्रस्तुत आशंकाओं, आतंकों और युद्ध विभीषिकाओं अपराधों से लोहा ले सकना उनके दावानल को बुझा सकना संभव हो सके। यज्ञ मात्र प्रतिकार ही नहीं है, उसके साथ परिष्कार भी जुड़ा हुआ है । यज्ञ प्रक्रिया परमार्थ प्रयोजनों के लिए की गयी एक आध्यात्मिक उपचार प्रक्रिया है । अदृश्य में संव्याप्त विकृतियों से निपटने व सुखद संभावनाएँ प्रस्तुत करने की इसमें अपार संभावनाएँ हैं । इन दिनों हर किसी के द्वारा इसे जनहितार्थाय अपनाया ही जाना चाहिए । *

परमार्थ सार्थक कैसे बने ?

व्रत, उपवास, दर्शन–झाँकी तीर्थ–यात्रा, कथा कीर्तन में निजी जीवन का बहुत सारा समय चला जाता है । उसमें कटौती करके स्वाध्याय एवं आत्म–चिन्तन के लिए समय लगाया जाय तो वह कहीं अधिक उत्तम है । भगवान को रिझाने की अपेक्षा आत्म सुधार में समय लगाना कहीं अधिक श्रेयस्कर है ।

बहुत कमाने की और बहुत खर्च करने की सनक को उतार करके निजी तथा पारिवारिक कार्य क्षेत्र को सीमित करना स्वावलम्बी बनाने का मार्ग खोजना अधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण है । "सादा जीवन उच्च विचार " की देव प्रक्रिया का निर्वाह इसी प्रकार हो सकता है कि हम औसत भारतीय स्तर की कसौटी पर अपने को निरन्तर कसते रहें और घरेलू कामों में उतना ही श्रम, समय मनोयोग लगावें, जितना औचित्य की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है । निजी जीवन को इतना बोझिल तो नहीं ही बनाना चाहिए, जिसका भार–वहन करने में कचूमर निकलने लगे ।

हलके–फुलके जीवन में मितव्ययता की नीति अपनायी जाती है । उस बचत का श्रेष्ठतम् सदुपयोग करने की बात सोचने में ही बुद्धिमत्ता है । अन्यथा बेकार बचा हुआ समय आलस्य प्रमाद में दुष्प्रवृत्तियों और दुर्व्यसनों को अपनाने में खर्च होने लगेगा, जैसा कि धर्म व्यवसायियों और प्रमादियों के सामने कोई ऊँचा उद्देश्य न रहने पर वे विडम्बनाओं में स्वयं उलझते और दूसरों को उलझाते देखे गये हैं ।

हमें पारिवारिक उत्तरदायित्वों का परित्याग करने और अन्यत्र कुटी बनाने की अपेक्षा घर को ही तपोवन जैसा संत आश्रम जैसा गुरुकुल जैसा बनाना चाहिए , जिसमें सदस्यों की शरीर की निर्वाहचर्या चलती रहे और साथ ही उस पुण्य परमार्थ का प्रवाह भी बहता रहे, जो गंगा–गोमुख से निकल कर सुदूर क्षेत्रों को हरा भरा बनाने की दृष्टि से परम पूज्य मानी जाती है । जब उपयोगी जल–प्रवाह को गंगा यमुना जैसा देव–स्तर का माना जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि सत्प्रवृत्तियों में संलग्न देव समुदाय को उच्च लोकवासी सदस्य न माना जाय और उसे असंख्यों की अन्तरात्मा में भरपूर श्रद्धा सम्मान न मिलने लगे ।

कुछ ही लोग अपने देश में ऐसे हैं, जो धन दान दे सकते हैं । जो हैं, वे भी आधे बन्दर, आधे कबूतर हैं । क्योंकि अनुचित मात्रा में लाभ कमाने और उसका उपयोग गुलछर्रे उड़ाने में मनुष्य बन्दर ही बनता है । जो अधिक कमाता है , उसे समय की पुकार को ध्यान में रखते हुए पिछड़े लोगों के लिए उदारतापूर्वक खर्च करते रहने पर कोई व्यक्ति धन कुबेर नहीं बन सकता और जब वैसी मनःस्थिति न हो, तो निर्वाह से इतना धन किस प्रकार बचे, जिससे सदावर्त चलायें और ताज महल बनाये जा सकें ।

> *बगदाद के खलीफा ने अपना वेतन निश्चित कर रखा था । वे प्रतिदिन राजकोष से तीन दिरम लिया करते थे । इस अल्प आय में ही वे अपने परिवार का पालन बहुत सादगी से करते थे ।*
>
> *ईद का त्यौहार चार दिन बाद आने वाला था । बेगम ने कहा–जहाँपनाह ! आप तीन–चार दिन का अपना वेतन पेशगी ले लें तो बच्चों के लिये नये कपड़े सिलवा दूँ ।*
>
> *खलीफा ने कहा– कौन जानता है कि मैं अगले तीन–चार दिनों तक जीवित रहता भी हूँ अथवा नहीं । तुम खुदा से मेरे जीवन के आगे के तीन दिनों का पट्टा ला दो तो मैं खुशी–खुशी उतने दिनों का पेशगी वेतन ले लूँगा ।*
>
> *बेगम ने फिर कभी वैसी माँग नहीं की वरन् तीन की अपेक्षा दो ही दिरम से अपना बसर प्रारम्भ कर दिया ।*

संसार भर के देवमानवों की कार्य प्रणाली चिर अतीत से लेकर अद्यावधि इस राज मार्ग पर चलती रही है । कि अपनी श्रम, सामर्थ्य और प्रतिभा का उपयोग युग समस्याओं के समाधान में उत्सर्ग करें । इस प्रकार परमार्थ प्रयोजनों के लिए श्रमदान अपने आप में इतना सार्थक और इतना महत्वपूर्ण है कि उसका यशगान

शानदार ही नहीं वरन् इतिहास के स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने उनके पद चिन्हों पर चलकर असंख्य आदर्शों का निर्वाह करते हुए कृत- कृत्य बनने योग्य है ।

एक हाथ से लूटना और दूसरे हाथ से लुटाना यह उन्हीं अक्ल के अंधों और गाँठ के पूरों से बन पड़ता है, जिन्हें आधा बन्दर और आधा कबूतर कहा गया है । बंदर इसलिए कि फसलें उजाड़ते और घुड़कियाँ दिखाते हुए घूमते रहते हैं । कबूतर इसलिए कि कभी-कभी मर्जी आती है, तो पूरे बगुला भगत बन जाते हैं और इस प्रकार की हठ करते हैं , जिन्हें देखने वाले हाथों हाथ वाह-वाही करने लगें और मुफ्तखोर चाटुकारों की जय-जय करते देख कर "दानी कर्ण " की बाछें खिलने लगे ।

समझा जा रहा है कि इन पंक्तियों के पाठक मध्यवर्ती समुदाय के और सामान्य आर्थिक स्थिति में गुजारा चला रहे होंगे । उन्हें सादगी अपना कर युगधर्म के लिए समय बचाने की जो सूझ सूझी है, उसे परमात्मा की प्रत्यक्ष प्रेरणा ही कहा जा सकता है । सन्त और महामानव यही करते और यही कराते रहे हैं । आज के समय में भी जाग्रत आत्माओं के लिए वही करणीय और अनुकरणीय भी है । हमें साधु ब्राह्मण की सनातन परम्परा जितनी मात्रा में संभव हो उतनी मात्रा में जाग्रत जीवन्त बनानी चाहिए ।

किसी का पेट भरने के लिए पैसे से काम चल सकता है, पर जब व्यक्तित्वों को झकझोरना, सुधारना, और उठाना हो, तो जन सम्पर्क साधने और मानवी गरिमा के अनुरूप मार्ग अपनाने के लिए निरन्तर परामर्श उद्‌बोधन देना पड़ेगा । कारण कि अन्तराल को जगा देना, उठने और लड़ने के लिए प्राण फूँक देना यह सबसे बड़ा काम है, जिससे एक का नहीं, असंख्यों का भला हो सकता है । स्थानीय वातावरण ही नहीं, समय का प्रवाह भी बदल सकता है । ठोस सेवा इसी उपाय से बन पड़ती है । सार्थक पुण्य-परमार्थ का सही तरीका भी यही एक है ।

समय सभी के पास चौबीस घंटे का है । उसे श्रेष्ठतम सन्मार्ग पर लगाने का एक ही तरीका है कि सर्व प्रथम अपने निज के समयक्षेप की योजना को बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से विनियोजित किया जाय । समय का सही विभाजन कर लेने और उस निर्धारण पर मुस्तैदी के साथ आरूढ़ रहने की रीति-नीति ऐसी है, जिसके सहारे चिरस्थायी देव परिपाटी अपनाने का सुयोग बनता है । अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित, और अनुशासनहीन व्यक्ति तो स्वयं गड़बड़ी करते और दूसरों से गड़बड़ियाँ कराते रहने के निमित्त कारण बनते हैं ।

विशेष परिस्थितियों को छोड़कर सामान्य स्थिर जीवनचर्या अपनाने वालों के लिए यही उपयुक्त है कि आठ घण्टा रोटी कमाने के लिए, सात घण्टे सोने के लिए, पाँच घण्टा नित्य कर्म तथा इधर उधर के अन्य कामों के लिए रखकर काम चलायें । इसके बाद पूरे चार घण्टे की बचत हो सकती है । इसे विशुद्ध रूप से पुण्य परमार्थ के लिए आत्मकल्याण के लिए-युग धर्म निर्वाह के लिए सुरक्षित रखा जाय । इस बचत का नियोजन एक ही निमित्त किया जाना चाहिए-लोक मानस परिष्कार के लिए । इतना बन पड़ने से पिछड़ों को स्वावलम्बी-प्रगतिशील बनाने का अवसर बन पड़ेगा । जो अपने में असमर्थ हैं उनके लिए जन सहयोग की नियमित व्यवस्था के आधार पर यह भी संभव होगा कि बिना स्वाभिमान गँवाये वह आवश्यक सहायता नियमित रूप से उतने समय तक प्राप्त करते रह सकें, जितने समय तक जितनी मात्रा में उन्हें वास्तविक आवश्यकता है । यह कार्य किसी संगठन के माध्यम से उसी की देखरेख में चलना चाहिए, अन्यथा व्यक्ति की अनगढ़ता दान राशि का दुरुपयोग करेगी या करवाएगी । क्योंकि लेने वाले जितने जरूरत मंद हैं, उनकी तुलना में उन उतावलों की भी कमी नहीं, जो दानवीर बनने की क्षुद्रता या अदूरदर्शिता अपनाकर तात्कालिक वाहवाही के लिए पैसों की फुलझड़ी जलाकर धन को स्वाहा कर देने के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकते ।

वृक्ष, धूप-शीत सहते रहते हैं पर दूसरों को छाया, लकड़ी और फल-फूल बिना किसी प्रतिफल की आशा के मनुष्यों से लेकर पशु -पक्षियों तक को बाँटते रहते हैं । क्या तुम इतना भी नहीं कर सकते ?

प्रश्न एक ही है कि देव पुरुष अपने समय एवं अनुदान का श्रेष्ठतम रीति से किस प्रकार नियोजन करे ? जो सुलभ भी हो सार्थक भी और व्यावहारिक भी । इतना सूझ पड़ने पर ही जो बन पड़ता है वह कर्ता को संतोष देता है तथा समाज के घटकों के लिए सार्थक सहयोग बनकर प्रस्तुत होता है । ✱

अपंगों की मसीहा

नर्सिंग होम के अहाते में प्रवेश करते हुए उसका मन–भूले बिसरे अतीत की भटकी यादों को बटोरने में लगा था । विद्यालय जीवन में कितनी घनिष्टता थी उन दोनों में । थी भी तो कुछ ऐसी ही वह । हरेक उसका अपना था । हरेक उसे अपना कहने में गर्वित होता था, छात्र से लेकर शिक्षक तक सभी । स्वस्थ–सुपुष्ट शरीर गोल भरा चेहरा कुछ बोलने को आतुर लगते होंठ गहरी नीली झीलसी आँखें जिनकी गहराई अनन्त में समाती लगती थीं । जैसी दीप्ति देह वैसा ही मधुर कंठ । विद्यालय में होने वाली संगीत प्रतियोगिताओं में उसे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब उसकी इस सहेली ने पहला इनाम न पाया हो । बात संगीत की हो या कला की । जादू हाथों का हो या मस्तिष्क का हर कहीं वह अव्वल थी । आज वही प्रतिभा ....।

बड़ा चौड़ा फासला है तब और अब में । इन पाँच सालों ने इसे समेटने की जगह फैलाया ही है । अन्तर की खाई कहीं अधिक गहराई है । उसके पाँव धरती पर थे मन अतीत के आकाश में मड़राता यादों की बदलियों से लुका छिपी खेलने में तन्मय था । अजब है मानव मन अतीत का अद्‌भुत प्रेमी । इसकी हर दशा में उसे गौरव का आभास होता है । सुखभरी सफलताएँ जहाँ उसमें पुरुषार्थ की अकड़ जमाती हैं वहीं अवसाद भरी विफलताएँ जीवट भरे संघर्ष का अहसास कराती हैं ।

"आप को किससे मिलना है ?" दूधिया परिधान में लिपटी नर्स के इन शब्दों ने उसे अतीत के आकाश से वर्तमान की धरती पर उतार दिया । वर्तमान जो हर पल चाहे अनचाहे रूप से अपने साथ रहता है उससे हम कतराना चाहते हैं । जबकि पल–पल दूर खिसकते जा रहे अतीत को प्रतिक्षण अपना रंग बदलते भविष्य को गले लिपटाने के लिए आतुर है । शायद उसने कुछ ऐसा ही सोचते हुए उत्तर दिया 'मिस सारा 'फुलर' से । धीमें से कहे गए इन शब्दों ने नर्स के अस्तित्व को कहीं तीव्र उद्वेलन किया । हल्के से बुदबुदाई वह सारा फुलर । पूछने वाली युवती ने भी इस नाम को दुहराया ।

पता नहीं क्या जादू था इस नाम में ? हल्के से स्मित के साथ उसने पीछे आने का इशारा किया । कमरे में प्रवेश करती हुई बोली "मिस सारा देखिए किसे ले आई हूँ ?" नर्स के पीछे खड़ी एलीनेर विस्मय विमूढ़ देखती रह गई अपनी सहेली को । ईजी चेयर पर बैठी सारा ने अपने आस–पास ब्रश–रंग बिखेर रखे थे । शायद कोई चित्र तैयार करने में जुटी थी । बड़ी नरमी से उसका हाथ पकड़े एलीनेर ने अपना परिचय दिया । सारा की आँखें चमक उठीं "अरे एली तू ! कितनी बदल गई है कहाँ थी इतने दिन !"एलीनेर मुसकराई, कई दिनों की पुरजोर कोशिशों के बाद गढ़ा गया भाषण, आश्वासन, सांत्वना और बिधि –निषेध के महल की सारी ईंटे एक साथ भरभरा कर गिर पड़ीं । उस पीले मुख पर खिंची क्षीण हास्य रेखा ने उसे पूरी तरह हरा दिया उसका दर्प चकनाचूर हो बिखर गया ।

उसे याद हो आयी विगत सप्ताह उन दोनों की सहेली इवा से मुलाकात । इवा आगे पढ़ते हुए चिकित्सक बन गयी थी । दोनों की बात चीत के क्रम में सारा आ टपकी थी और इवा ने बताया था "पता नहीं, किस मिट्टी की बनी है वह । पूरे पाँच साल हो गए भुगतते ? तू सुन ही चुकी होगी उसकी लम्बी बीमारी की खबर । अपार धैर्य है उसमें, कभी शिकायत नहीं कभी उदासी नहीं !" एलीनेर पूछने लगी "करती क्या है दिन भर ?" इवा ने बताया भई ! उसका तो जवाब नहीं । कहती है, समय कम पड़ता है क्या कुछ नहीं करती, क्या कुछ नहीं सीखती, दिन भर चित्र भी बनाती रहती है व अब तो आजकल नया शौक चढ़ा है किसी पुस्तक से डिजाइन देखकर रद्दी चीजों के खिलौने बनाती है । खिलौने ऐसे, कि बच्चे देखते ही मचल उठते हैं । पिता ने तरह–तरह के खेल–खेलने का मन बहलाने का सरंजाम जुटा रखा है वह कहती है मुझे दम मारने की फुरस्त नहीं ।" इस अनोखी बीमार की कहानी ऐलीनेर को हैरान कर रही थी । हैरानी बढ़ने के साथ आकर्षण बढ़ता जा रहा था । वही हैरानी उसे सारा के पास लायी थी । ...जो सालों से बीमार है । जिसकी बाई आँख की ज्योति लगभग बुझ चुकी है । एक हाथ लगभग बेकार दशा में है । रीढ़ की हड्डी का असहनीय दर्द । पैरों से तो एक तरह से अपंग ही है, अब शायद ही ठीक हो । जिसकी जीवन ज्योति किसी भी पल बुझ सकती है उसकी अनन्त कर्मनिष्ठा, अपूर्व उत्साह, अनन्त धैर्य किसे हैरत में न डाल देगा ? मुलाकातें होती

रहीं हर मुलाकात में एक नया रहस्य उद्घाटित होता ,

आज सीढ़ियाँ चढ़ते उसके पाँव हठात् थम गए । सिर नीचा किये सैमक्लीमेंन्स उतर रहे थे । साहित्य जगत में 'मार्कट्वेन के नाम से विख्यात इस विभूति को देख सकना सहज था । उसे देख कर जबरन मुसकान लाने की कोशिश करते हुए बोले "कब आयी, ऐलीनेर तुम ?" "बस दस दिन पहले " अभिवादन करते हुए कहा "सर ! आपका स्वास्थ्य तो ...." क्षीण हँसी के साथ बोले " ऐसा होता तो बुरा क्या था । मैं सारा को साहित्य का ज्ञान देने जाता हूँ और स्वयं कितना कुछ ज्ञान प्राप्त करता हूँ । बाइस वर्ष की उस नवयुवती के शरीर को दिन रात गलते देखता हूँ और उसके उत्साह जिजीविषा देख कर हैरान होता हूँ । वह कहती है उत्साह जीवन का द्वार है । जाओ तुम भी सीखो । भगवान ने उसे हम सब को जीवन का रहस्य सिखाने के लिए भेजा है ।"

अन्दर जाने पर उसने सुना सारा मजे से 'गोटन मार्गन माइन गोट ' दुहराए जा रही है । लगता है । फिर कुछ नया बुदबुदाते हुए उसने कदम बढ़ाए । पाँव की आहट भांपकर पीछे मुड़ते हुए चहक पड़ी " अरे ऐली दो दिन कहाँ रही " फिर अपने से ही बोली "समय नहीं मिला होगा । तेरे जैसी व्यस्त नहीं हूँ मैं " एलीनेर बोली –"पर तुमने यह क्या बकझक लगा रखी है । अब क्या सीख रही हो ?"

"बकझक नहीं, जर्मन सीख रही हूँ । कुछ ही दिनों में शॉपनहावर पालडायसन के विचारों का जायका लेने लगूँगी । बस पूछो न ।" मुख मुद्रा से ऐसा लग रहा था जैसे सचमुच में जायका ले रही हो । वह आँखें फाड़े कभी सहपाठिनी रह चुकी इस युवती को देखे जा रही थी । भले अनुकूल परिस्थितियाँ रहने के कारण उसने ज्यादा डिग्रियाँ पाली हों और सारा अपनी बीमारी के कारण यह निरर्थक बोझ न बटोर पाई हो । पर जीवन विद्या के क्षेत्र में सारा कोसों आगे थी ....कोसों ।

"ऐसे घूर–घूर कर क्या देख रही है ? बैठ ।" हँसते हुए सारा कह उठी ।"ऐसी स्थिति में भी तू जीवन...!" गहरी उसांस में आधा वाक्य खो गया । आशय को परख कर वह भी गम्भीर हो कहने लगी "देख एली ! लोग बड़ी भूल करते हैं कि शरीर को जीवन समझ बैठते हैं । यह तो यंत्र है निरी मशीन , यदि चालक कुशल हो तो अनगढ़ यंत्र से भी काम चला लेता है । असली चीज तो उत्साह है उत्साह ! समझी, अस्तित्व की अभिव्यक्ति का महाद्वार ।" वह सुन रही थी अपनी सहेली की इस अनुभूति को । "अनुभूति ही तो सच्चा ज्ञान है । अनुभव रहित जानकारियाँ तो बोझा हैं जिन्हें लादने वाला भार वाहक बन कर रह जाता है । आनन्द से भरा पूरा अस्तित्व तो प्रति पल द्वार खटखटा रहा है खोलो हम प्रकट होना चाहते हैं । दरवाजा हमीं बन्द करके बैठे हैं । सच कहती हूँ एली ! जहाँ उत्साह है वहीं यथार्थ कर्मनिष्ठा है वहीं जीवन है वहीं सौन्दर्य है वहीं सब कुछ है फिर शरीर कैसा भी क्यों न हो ।" ऐलीनेर को अनुभव हो रहा था कि सारा की वाणी अक्षर अक्षर को गूँथ कर बनाए गए शब्द, शब्द शब्द को गूँथ पिरो कर बनाये गए वाक्य भर नहीं हैं वरन् कुछ ऐसा है जो सोचने के लिए विवश कर रहे हैं ।

सारा अपने पूरे उत्साह में थी । लगता था इन क्षणों में उसने बीमारी को कोने में रख दिया है । वह कह रही थी "साहित्य कला दर्शन, धर्म , विज्ञान, इस संसार में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सब अंदर से

मेघ समुद्र से झपटता, खारे को मीठा बनाता, नीचे से ऊँचा उठता और बिना प्रतिफल की आशा के जी खोलकर बरसता है । इसी को कहते हैं जीवन ।

उपजे उत्साह–उल्लास का वरदान है यह सब इसी से पनपा इसी में बढ़ा और विकसित हो रहा है । मेरा तो कहना यही है कि हर कीमत पर उत्साह बरकरार रखो क्षण–क्षण जीवन का आनन्द लो । अस्तित्व के महान सौन्दर्य को प्रकट करो ।" कहते–कहते वह कराह उठी शायद रीढ़ का दर्द फिर उभर उठा था । हल्की सी सिसकारी के साथ वह पलंग पर लेट गई ।

उसकी बातों को सुन रही एलीनेर उसके धैर्य को सराहती हुई बोली मुझे विश्वास है सारा एक दिन यह बीमारी जरूर तुझसे हारेगी और एक दिन यह सत्य घटित हुआ, बीमारी को हारना पड़ा । भले ही इस लड़ाई में सारा को शरीर के कुछ अंग की सामर्थ्य गवाँनी पड़ी । ठीक होते ही उसने बोस्टन में एक स्कूल खेला । अपंगों के लिए खोले गए इसी स्कूल में सुप्रसिद्ध हेलन कीलर का शिक्षण हुआ था उनकी निर्मात्री थी यही सारा फुलर जिनके समूचे जीवन से प्रतिपल यही संदेश झरता था । *"उत्साह आनन्द परिपूरित अस्तित्व की अभिव्यक्ति का द्वार है इसे किसी कीमत पर बन्द मत होने देना ।"* ✱

जड़ी-बूटी विज्ञान का नये सिरे से अनुसंधान

अन्न, शाक और फल आहार के प्रमुख अंग हैं। आहार से ही रक्त-मांस बनता है। उसी के सहारे पुरुषार्थ करना और जीवित रहना बन पड़ता है। अस्तु आहार की अनिवार्यता और महत्ता सभी समझते हैं।

इसी श्रृंखला में एक कड़ी जड़ी-बूटियों की और जुड़ती है परमेश्वर की अनेकानेक महती अनुकम्पाओं में से एक यह भी है कि रोगों के निवारण और सामर्थ्य के अभिवर्धन हेतु बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ भी जहाँ-तहाँ उगती हैं। उनके आधार पर मनुष्य अपनी आरोग्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सहज ही कर सकता है। खनिज सम्पदा का जीवन क्रम में कितना महत्व है, यह सभी जानते हैं। धातुएँ, रसायनें, कोयला, तेल आदि अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भू गर्भ से मिलती हैं। वे न हों तो कितनी कठिनाई का सामना करना पड़े। इसे सभी जानते हैं। ठीक यही बात वनौषधियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

सामान्य वनस्पतियाँ घास-चारे के रूप में पशुओं का और अन्न-शाक के रूप में मनुष्यों का जीवन चलाती हैं। इसलिए उन्हें वाग्भट्ट कहा गया है। इससे एक कदम आगे बढ़ कर जड़ी-बूटियों की बात सामने आती है। खदानों में साधारणतया पत्थर कोयले ही निकलते हैं, पर कहीं-कहीं उन्हीं में बहुमूल्य हीरा-पन्ना जैसे रत्न भी निकल आते हैं। यही बात वनस्पतियों के सुविस्तृत क्षेत्र में जड़ी-बूटियों के संबंध में भी कही जा सकती है। वे अनेकानेक शारीरिक मानसिक रोगों के निवारण में पूरी तरह समर्थ हैं। इतना ही नहीं उनके सहारे शारीरिक बलिष्ठता, मानसिक प्रखरता भी उपलब्ध की जा सकती है। दीर्घायुष्य का लाभ मिल सकता है, उनके सहारे आत्मिक प्रगति का सुयोग भी बनता है।

महर्षि चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट जैसे दिव्यदर्शी ऋषियों ने अथक परिश्रम करके समस्त धरातल को खोजा और यह ढूँढ़ निकाला था कि किन वनौषधियों में क्या विशेष गुण हैं और उनसे मनुष्य का किस प्रकार क्या हितसाधन हो सकता है। अपने अनुसंधान निष्कर्ष एवं अनुभव का सार उन्होंने आयुर्वेद ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक लिखा है। यह ऐसा विज्ञान है कि यदि उसे समझाया और अपनाया जा सके तो स्वस्थता को अक्षुण्ण बनाये रखने का मार्ग अति सरल हो सकता है। इनके सहारे बलिष्ठ रहकर दीर्घायुष्य का लाभ उठाया जा सकता है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इन दिनों एलोपैथी द्वारा प्रतिपादित मारक औषधियों का प्रचलन चल पड़ा है। रोगों का कारण विषाणुओं को माना और उन्हें मारने के लिए एण्टीबायोटिक्स के द्वारा शरसंधान किया जाता है। इसका तात्कालिक लाभ तो यह होता है कि विषाणुओं के मरने से रोग का प्रकोप थम जाता है। इसके बदले भारी हानि यह होती है कि आरोग्य रक्षा के रक्त कणों की सेना का भी उतना ही संहार होता है और शत्रु के साथ मित्र भी मरते हैं। आरोग्य रक्षा जिन स्वास्थ्य रक्षक जीवाणुओं पर निर्भर है यदि वे मारक औषधियों द्वारा धराशायी बना दिये जायँ तो फिर एक नया संकट यह खड़ा होता है कि रोग प्रतिरोधी क्षमता ही समाप्त हो जाती है। किसी भी बीमारी को आक्रमण करने की खुली छूट मिल जाती है। यहाँ तक कि सर्दी-गर्मी तक सहन नहीं होती और आये दिन लू लगने, जुकाम होने जैसी शिकायतें रहने लगती हैं। जो पक्ष एलोपैथी के औचित्य की परिधि में आते हैं, जहाँ कहीं सर्जरी अनिवार्य है, ऐसे अपवादों को छोड़कर उसके स्थान पर वनौषधि विज्ञान को प्रश्रय दिया जाय तो इसे दूरदर्शी विवेकशीलता कहा जाएगा।

आहार में से चटोरापन हटाने और अभक्ष्य से मुँह मोड़ने की आवश्यकता समझी जानी चाहिए। शाकाहार का महत्व समझना चाहिए, साथ ही स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान के लिए जड़ी-बूटियों का आश्रय लेना चाहिए। यही वह अवलम्बन है जिसे पूर्वजों ने अपनाया था। वे निरोग, समर्थ, और दीर्घजीवी रहते थे। इसका कारण उनका संयमी जीवन था। उसी दूरदर्शिता की एक कड़ी यह भी है कि स्वास्थ्य संबंधी व्यवधानों का निराकरण वनौषधियों के सहारे किया जाय। इस आधार पर रक्षक जीवकोषों को बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये रोगों को निरस्त किया जा सकता है। जड़ी-बूटियों की मुख्य विशेषता यह है कि वे जीवनी शक्ति बढ़ाती हैं। उस बढ़ी हुई

समर्थता के सामने विषाणु टिकते नहीं और सहज ही खदेड़ दिये जाते हैं। इस आधार पर बढ़ाई गई जीवनीशक्ति भविष्य के लिये भी आरोग्य रक्षा की किलेबन्दी सुदृढ़ करती है फलतः चिकित्सा के साथ-साथ समर्थता अभिवर्धन भी बन पड़ता है। जड़ी-बूटियाँ जीवनीशक्ति बढ़ाती हैं। यदि उन्हें शास्त्रीय अनुसंधानों, प्रतिपादनों के आधार पर अपनाया जाय तो गौदुग्ध की तरह वे हित साधन ही करती हैं। अनिष्ट की संभावना उनमें है नहीं, सो कोई जानबूझ कर विष निगले तो बात दूसरी है।

जड़ी-बूटियों में से कुछ ऐसी महत्वपूर्ण होती हैं जिन्हें संजीवनी कहा जा सके। लक्ष्मण जी की मेघनाद के शक्तिवाण से अर्धमृत जैसी स्थिति हो गई थी। स्थिति की गंभीरता देख कर रामचन्द्र जी विलाप करने लगे थे। सुषेण वैद्य को बुलाया गया। उनने हिमालय से एक दिव्य बूटी मँगाने को कहा। हनुमान लाये और उपचार से लक्ष्मण जी पुनः स्वस्थ हो गये। ऐसे ही अन्य प्रसंग भी हैं। वयोवृद्ध च्यवन ऋषि जर्जर शरीर थे। दुर्भाग्यवश उनकी आँखें भी चली गई। उपचार के लिए अश्विनी कुमार वैद्य आये और उनने जड़ी-बूटी उपचार किया। फलतः उनकी नेत्र ज्योति ही नहीं जवानी भी लौट आई। उस योग का नुस्खा तो कहीं उपलब्ध नहीं, पर किम्बदन्ती के आधार पर उसी घटना का बखान करते हुए च्यवनप्राशावलेह अभी भी बाजारों में बिकता है।

कल्प चिकित्सा के नाम से आयुर्वेद में एक विशिष्ट उपचार पद्धति का वर्णन है। राजा ययाति जैसे वयोवृद्धों को उसी आधार पर तरुण बनाया गया था। ऋषियों के आश्चर्यजनक लम्बे जीवन का वर्णन मिलता है। इनमें उनकी योगसाधना तो प्रधान थी ही, दिव्य जड़ी-बूटियों का उपयोग भी सम्मिलित था।

सर्प और नेवले की लड़ाई के संबंध में कहा जाता है कि सर्प दंश से आहत होने पर नेवला एक विशेष जड़ी को खाने दौड़ता है और उससे नई शक्ति पाकर साँप पर नया आक्रमण करता है। नेवले की जीत का कारण सर्प की तुलना में उसकी समर्थता नहीं, वरन् औषधिभिज्ञता ही चमत्कार दिखाती है।

इन दिनों जड़ी-बूटी का महत्व, उपयोग ही नहीं ज्ञान तक आँख से ओझल होता चला जा रहा है। एक जैसी शकल वाली वनस्पतियों को किसी के नाम पर किसी को उखाड़ा, बेचा और खरीदा जाता है। पंसारियों की दुकानों पर वे वर्षों पुरानी रखी रहती हैं और पहचान सही न होने से एक के स्थान पर दूसरी थमा दी जाती हैं। वनस्पतियाँ एक वर्ष में गुणहीन हो जाती हैं। होना यह चाहिए कि अवधि समाप्त होने पर गुणहीन हुई वनौषधियों को नष्ट कर दिया जाए। अँग्रेजी दवाइयों में यह ईमानदारी अभी भी पाई जाती है कि अवधि समाप्त होने पर इन्हें फेंक दिया जाता है। पर जड़ी-बूटियाँ तो बीस-तीस वर्ष तक भी यथावत् बिकती रहती हैं। गुणहीन होने पर उन्हें फेंक देने की अभी तक कहीं भी व्यवस्था नहीं हो सकी। यही कारण है कि उनका लाभ वैसा नहीं मिलता जैसा कि मिलना चाहिए था।

आवश्यकता यह समझी गई कि जड़ी-बूटी विज्ञान को पुनर्जीवित किया जाय। आयुर्वेद पाँचवा वेद है। इसे अथर्ववेद का व्याख्या-विवेचन कहा जाता है। वेदों के उद्धार-प्रयास का सर्वप्रथम यहीं से आरंभ होना चाहिए। आयुर्वेद में मात्र जड़ी-बूटियों का उपयोग उपचार है। रस-भस्मों का प्रचलन तो बाद का भी है और बाहर से आया हुआ भी।

> ***परमेश्वर तुम्हारा रूप धारण करने को इस शर्त पर तैयार है कि तुम उसका रूप धारण कर सको।***

देव संस्कृति की पुरातन परम्पराओं को नवजीवन प्रदान करने के संदर्भ में शान्तिकुंज द्वारा महत्वपूर्ण सभी जड़ी-बूटियों का शोधकार्य नये सिरे से प्रारंभ किया गया है। इसके लिए आश्रम की भूमि में दुर्लभ वनौषधियाँ दूर-दूर से, विशेषतया हिमालय क्षेत्र से खोज-खोज कर लाई लगाई गई हैं। इन सभी का रासायनिक विश्लेषण करने के लिए एक सर्वांगपूर्ण प्रयोगशाला बनाई गई है जिससे हर जड़ी-बूटी के असली-नकली होने का उसमें रहने वाले पदार्थों तथा गुणों का वर्गीकरण-विश्लेषण हो सके। इस आधार पर यह संभव हुआ है कि वैज्ञानिक क्षेत्रों को भी जड़ी-बूटियों की गुण-गरिमा और प्रभाव क्षमता से परिचित-प्रभावित किये जाने में मदद मिली है।

इन प्रयोगों के आधार पर आशा की गयी है कि आयुर्वेद को पुनः विश्वव्यापी मान्यता मिलेगी। विज्ञान की परीक्षण कसौटी पर वह खरा उतरेगा। चरक सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ऋषियों के महान प्रयास पर छाये हुए कुहासे को हटाने वाला नया प्रभात उदय होगा। *

आत्मानुशासन का प्रखर पुरुषार्थ

प्रत्यक्षतः शरीर से ही शुभ-अशुभ कर्म बन पड़ते दिखाई देते हैं पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। शरीर हमारा बफादार नौकर है जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त हमारा साथ देता है। भला-बुरा, सरल कठिन, जैसा भी उचित अनुचित काम उसे सौंपा जाय, उसे करता रहता है। कभी आनाकानी नहीं करता। उसने किसी को कभी नहीं सताया सच तो यह है कि मनुष्य ही अपने अत्याचारों अनाचारों से उसे संत्रस्त करता रहता है। ऐसे दबाव डालता और ऐसे काम कराता है जो उचित नहीं हैं। इसलिए बात बात में यह कहना उचित नहीं कि शरीर ही पाप की जड़ है। उसी की आसक्ति से हम अधःपतन के गर्त में गिरते हैं।

आत्मा ईश्वर का अंश है। उसका दायित्व व्यक्ति को ऊँचा उठाना, आगे बढ़ाना, भवसागर से पार लगाना है। अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ने के लिए और लोक मंगल के दायित्वों को पूरा करते हुए परब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त कराना है। इसके लिए वह समय-समय पर चेतावनी भी देता रहता है शुभ कर्म करने पर सद्विचारों से ओतप्रोत रहने पर उसमें से प्रफुल्लता भरा उत्साह उमगता है। कुमार्ग अपनाने पर दिल धड़कता है, आत्मग्लानि होती है और भीतर से संकेत मिलता है कि अनीति अपनाना अपने साथ ही अत्याचार करना है। आत्म प्रवंचना अपनाकर कोई कभी सुखी नहीं रह सकता। इस स्तर की शिक्षायें अन्तराल में से सदा ही उठती रहती हैं। आत्मा परमात्मा का अंश है, वह अनर्थ सहन नहीं कर सकती। पद दलित होने पर वह व्यक्ति को शाप देती रहती है और किसी कोने पर पड़ी भूखी प्यासी कराहती रहती है।

फिर विचारणीय है कि हमें कुप्रेरणाएँ कौन देता है ? कुकुर्म कौन कराता है, भटकाता और भरमाता कौन है ? लोक और परलोक में नरक जैसी सड़न में घसीटता कौन फिरता है ?

विचार करने पर शरीर और आत्मा की मध्यवर्ती एक चेतना और भी देख पड़ती है। उसका नाम है-मन। मन प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर भी नहीं होता है और न उसका कार्य समझ में आता है। पर है वह अतिशय बलिष्ठ। साथ ही ऐसा मायावी जिसका ताना बाना सहज समझ में नहीं आता। वह क्या कर रहा है ? किसलिए कर रहा है और जो प्रलोभन का सब्ज बाग दिखाया जा रहा है, उसका दूरगामी प्रतिफल क्या होगा, इसका भी निर्णय अन्तःकरण को करने नहीं देता। काले कुहासे की तरह उस पर भी छाया रहता है। आश्चर्य यह है कि इसकी हरकतें और हलचलें हम देख समझ भी नहीं पाते और सम्मोहित की तरह वह करते चले जाते हैं, जो न करने योग्य है।

इस मध्यवर्ती, शैतान के दलाल को विकृत मन कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। जब वह अपनी सही स्थिति में होता है तो कल्पनाओं के अम्बार बाँध देता है और उतना भाग दौड़ करता है कि आश्चर्य होता है। एक बार एक तांत्रिक ने भूत सिद्ध किया। उस भूत ने यह शर्त रखी कि मुझे हर समय काम मिलना चाहिए। बेकार मैं नहीं बैठ सकता। बेकारी का अवसर मिला तो मैं इस साधक को तोड़ मरोड़ कर रख दूँगा। साधक कुछ दिन तो काम देता रहा पर जब सभी काम समाप्त हो गये तो भूत ने धमकाना आरंभ कर दिया और जान लेने पर उतारू हो गया। अन्त में एक उपाय किया गया कि आँगन में बाँस गाड़ा गया और कहा गया कि जब भी खाली रहा करे, उस पर चढ़ा-उतरा करे। भूत को काम मिल गया और समस्या का हल निकल आया। मन खाली रहने पर इसी प्रकार तंग करता है।

मन पर ही जन्म जन्मान्तरों के कुसंस्कार चढ़े होते हैं। अनेक निकृष्ट योनियों में घूमने के कारण उसी का यह स्वरूप बन गया है कि जो भी अवसर मिलता है उसी में अपने पूर्व संचित कृमि कीटकों जैसे हेय कुसंस्कारों को चरितार्थ करना आरम्भ कर देता है। नशेबाज को समझाते रहने पर भी वह अपनी करतूत से बाज नहीं आता और कुछ न कुछ नटखटपन आरंभ कर देता है। ऐसा नटखटपन जिसे अपनाने पर न चैन से रहा जा सकता है और न चैन में दूसरों को रखा जा सकता है।

शरीर के कण-कण में बीज रूप में दिव्य क्षमतायें भरी पड़ी हैं। वे प्रसुप्त स्थिति में होती हैं इसलिए उन्हें आसानी से कहीं से कहीं ले जाया जा सकता है। वह शक्ति भण्डार प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं होता। उसे जिस भी दिशा में चलाया जाता है, व्यामोहग्रस्त की तरह उसी दिशा में चलने लगता है। नशे की स्थिति में भी मनुष्य भय और लज्जा छोड़कर कुछ भी कुकृत्य करने को तैयार हो जाता है। ऐसी दशा में यों दोष तो अन्तः चेतना पर ही आता है। पर यह सारी करतूत होती है मन की। मन लकड़ी में लगी घुन की तरह अपना काम करता रहता है और जीवन रूपी शहतीर को भीतर ही भीतर खोखला करके उसे धराशायी कर देता है। यदि ऐसा न होकर मन का स्थान विवेक को मिला होता तो उसके निर्धारण कुछ और ही होते और उसका परिणाम ऐसा होता जिसके लिए धन्य कहलाने का सुयोग मिला कहा जा सकता है।

मन का निजी स्वभाव नटखट बालकों जैसा है। उसे प्रयत्नपूर्वक समझाना और सुधारना पड़ता है। इस कार्य में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेता है, समझना चाहिए कि उसे मिले हुए भूत से उपयोगी कार्य कराते रहने का अवसर मिल गया।

बहुमूल्य मानवी जीवन को सुरदुर्लभ कहा गया है। इसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करके कोई भी सामान्य स्तर का व्यक्ति ऐसे असाधारण मार्ग अपना सकता है जो अपनों और दूसरों के लिए उत्साहवर्धक आनन्ददायक सिद्ध हो सके। इस प्रयोजन में एक मात्र बाधक है कुसंस्कारी मन। उसे परिमार्जित किया जा सके तो समझना चाहिए कि जीवनोत्कर्ष की अधिकांश समस्या का समाधान हो गया। क्योंकि जीवन को गतिशील बनाने, दिशा देने की लगाम उसी ने अपने हाथों सँभाल रखी है जबकि वस्तुतः इसका अधिकारी आत्मा है। आत्मा को राजसिंहासन से धकेल कर इस मायावी गुलाम ने ही सारे अधिकार अपने हाथ में ले रखे हैं।

इसके लिए किया यह जाना चाहिए कि भगवत् समर्पण की साधना में अपने आप को संलग्न किया जाय। भगवान के अगणित गुणानुवादों में से अपने लिए इतना ही पक्ष हृदयंगम करना पर्याप्त है कि वह मनुष्य स्तर के लिए "सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय" है। उसके प्रति आत्म समर्पण की भावनाओं से अन्तराल को भरने का तात्पर्य है ईश्वर की उच्चस्तरीय विशेषताओं को अपने कण-कण में समाविष्ट करना। जिस प्रकार ईंधन अपने आपको अग्नि के निमित्त समर्पित करता है तो वह समिधा सामान्य लकड़ी की होते हुए भी अग्नि रूप हो जाती है। अग्नि की समूची उर्जा और आभा अपने में धारण कर लेती है। उसी प्रकार समझा जाना चाहिए कि अपनी आत्मा भी उसी प्रकार जाज्वल्यमान हो गयी और हेय स्तर के कषाय-कल्मष जल गलकर भस्म हो गये अन्तःकरण के मर्मस्थल में आत्मा और परमात्मा का मिलन हो गया। नाला गंगा में पड़ने से गंगा जल हो जाता है। लोहा पारस को छूकर सोना बन जाता है उसी प्रकार यह प्रगाढ़ अनुभूति होनी चाहिए कि जीवन कण-कण में देवत्व का समावेश हो गया और जो दानवी कुचक्र उथले मानस पर छाया हुआ था वह तिरोहित हो गया। इस प्रयोजन के लिए प्राणायाम के साथ सोऽहम् की भावना करना उपयुक्त है। उससे आत्म स्वरूप का बोध होता है।

कितनों ने प्रशंसा की, कितनों ने निन्दा की, इसे मत देखो। कितना कमाया कितना गँवाया यह भी मत सोचो। उस राह को अपनाओ जिसे न्यायनिष्ठ अपनाया करते हैं।

उत्कृष्टता संवर्धन के लिए चिन्तन में स्वाध्याय और निर्माण में सत्संग सदा असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। आत्म निरीक्षण आत्म सुधार, आत्म निर्माण, और आत्म विकास के निमित्त परिमार्जन और परिष्कार की योजना बनाते रहना चाहिए। अपने चिन्तन में मानवी महत्ता के अनुरूप उत्कृष्ट आदर्शवादिता की अधिकाधिक मात्रा की भी धारणा करनी चाहिए। देवपक्ष के विचारों की मात्रा और प्रखरता यदि अन्तराल में विकसित होती रहे तो उस क्षेत्र में दुष्प्रवृत्तियों के पैर टिक ही नहीं पाते। परब्रह्म के राजकुमार का व्यक्तित्व जिस स्तर का होना चाहिए, उसी स्तर का उसे बनाने की उत्कंठा उठती है और यह दिव्य निर्झर जैसा प्रवाह ऐसा है कि इर्द-गिर्द के कूड़े करकट को बहा कर कहीं से कहीं फेंक देता है।

आत्मशोधन से तात्पर्य मन के परिमार्जन से है। यही वह कृत्य है जिसके साथ आत्मोत्कर्ष का समग्र प्रयोजन जुड़ा हुआ है। शरीर को सात्विकता की मर्यादा में बाँध कर रखें। आत्मा के अनुशासन को प्रखर करें। इतना बन पड़ने पर फिर वह अवरोध अनायास ही हट जाता है जिसमें मन के उपद्रव उछलते रहते हैं।

*

चमत्कारों की जननी संतुलित श्रमनिष्ठा

उच्चस्तरीय दायित्वों को निभाने के लिए जिस प्रतिभा की आवश्यकता है वह श्रमशीलों में होती है। श्रम और प्रतिभा इन दोनों को अनुक्रमानुपाती कहा जाय तो उचित ही होगा। एक का जितना विकास होता दूसरे का भी उतना ही अभिवर्धन होता जाता है। यही कारण है कि पश्चिमी देशों में बड़े-बड़े उद्योगपति अपने बच्चों को दायित्व का अनुभव कराने के लिए कारखानों में मजदूरों की तरह श्रम कराते हैं। यह उचित है। जो इस विधा को नहीं जानता वह दायित्वों का निर्वाह भी गम्भीरतापूर्वक नहीं कर सकता। इस सत्य के बाद भी व्यावहारिक जीवन में देखा यह जाता है श्रमशील भी सुयोग्य अथवा उतने योग्य नहीं होते जितना अपेक्षित है।

कारण पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि क्रिया व चिन्तन दोनों के क्षमतावान होने के लिए जिस सामंजस्य की अपेक्षा है, उसकी उपेक्षा की जाती है। शारीरिक श्रम करने वाले मानसिक पक्ष को भुला बैठते हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें गँवार मूर्ख जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। मानसिक श्रम करने वाले गँवार भले न कहे जायँ पर शारीरिक पक्ष की ओर ध्यान न दिये जाने के कारण उन्हें दुर्बल, रोगी, जैसी स्थिति से गुजरना पड़ता है। दोनों ही स्थितियों में मानवी प्रतिभा का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। सारी जिन्दगी स्थिति पक्षाघात के रोगी सी बनी रहती है। यों शरीर और मन बड़े करीबी हैं। एक के प्रभावित होने पर दूसरा प्रभावित होता है। शरीर में कोई रोग हो जाय तो मन बेचैन रहता है। यदि मन में क्रोध आवेश जैसे विक्षोभ उत्पन्न हो जायें तो रक्त संचालन में तेजी हाथों पैरों की हरकत जैसी विचित्र बातें होने लगती हैं। इन दोनों में पारस्परिक सामंजस्य अनिवार्य है। इसके बिना इन दोनों की शक्तियाँ ठीक ढंग से विकसित नहीं हो पातीं।

यह सामंजस्य स्थापित हो जाय तो व्यक्तित्व में प्रौढ़ता आती है। रूस में तो किसी समय समूचे राज परिवार के सभी सदस्यों के लिए शारीरिक श्रम करना अनिवार्य था। इस परम्परा को शुरू करने वाले सम्राट पीटर तब राजकुमार थे। उन्हें युवराज घोषित किया जा चुका था। इसका अर्थ ही था समस्त सुविधा और साधनों से सम्पन्न होना। परन्तु उन्होंने युवावस्था में ही निश्चय किया कि वे जीवन की खुली पाठशाला में पढ़ सामंजस्यपूर्ण जीवन जियेंगे। उन्होंने शाही-शान शौकत के बाड़े से निकल कर हालैण्ड की जहाज निर्माता कम्पनी में एप्रैंटिस के रूप में काम किया। इंग्लैण्ड की पेपर मिल और आटा मिल में काम किया। एक बार लोहे का बाट बनाने वाली फैक्ट्री में काम कर रहे थे। फैक्ट्री का मालिक उनके युवराज होने से परिचित था। महीने के अन्तिम दिन १० बाँट की एवज में निर्धारित मजदूरी से अधिक देने लगा। उन्होंने वापस लौटते हुए कहा कि मैं ३ कोयक हिसाब से ही पैसा लूँगा। मालिक को मानना पड़ा। बाद में इससे फटे जूतों के स्थान पर नए जूते खरीदे। आज भी ये जूते और तौलने के बाँट रूस के संग्रहालय में श्रमनिष्ठा के प्रतीक के रूप में सुरक्षित हैं। ऐसे उदाहरण पुरातन भारत के उन सभी नरेशों पर लागू होते हैं, जो जीवन कला शिक्षण हेतु एक 'साधारण बालक' की तरह अपने उत्तराधिकारियों को गुरुकुल भेजा करते थे।

मानसिक विकसित अवस्था तथा सुविधा-साधनों के बीच रहते हुए शारीरिक श्रम जीवन को जितना समर्थ व सक्षम बनाता है उतना ही इसका विपरीत भी सत्य है। अर्थात् शारीरिक श्रम करते हुए मानसिक श्रम का योग इसी तरह का क्षमतावान बना देता है। जानवान मेकर उन दिनों एक किताब की दुकान पर सवा डालर प्रति सप्ताह की दर-पर मजदूरी करते थे। किन्तु इसके साथ मानसिक योग्यता अर्जित करने का क्रम बराबर बनाए रक्खा। व्यापारिक तौर तरीके रीति-नीति सीखने के साथ अध्ययन भी करते। विकसित प्रतिभा की बदौलत बाद में एक दीवालिया फर्म को ले लिया। उस डूबती फर्म को उबार कर जानवान मेकर मजदूर से एक उद्योगपति के रूप में विकास कर सके।

इसी तरह का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है। "यूथ्स कम्पेनियन" नामक पत्रिका ने अमेरिका के समृद्धतम

व्यक्तियों की गणना में आने वाले साइरस डब्लू फील्ड का प्रसंग प्रकाशित किया था। भाई से उपेक्षित होकर फील्ड स्टूवर्ट की एक फर्म में साधारण मजदूरी के लिए भर्ती हुए। सुबह ६ बजे काम पर जाते और सूर्यास्त होने तक अपने काम में जुटे रहते। वेतन निर्धारित हुआ करीब ४ डालर प्रतिमास। दूसरा कोई होता तो इस शारीरिक मेहनत से थक कर शाम को घर जाते ही चैन से सोता। पर उन्होंने प्रतिभाशाली बनने की कसम उठा रखी थी। वह अपनी आत्म कथा में लिखते हैं कि इस कठोर श्रम के बाद भी वह वाणिज्य लाइब्रेरी जाया करते। वहाँ व्यवसाय सम्बन्धी पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का अध्ययन करते। जहाँ भी कुछ सीखने को मिल जाता वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते। इसी सामंजस्यपूर्ण परिश्रम के कारण साइरस अमेरिका के सुविख्यात उद्योगपति बन सके।

सामान्य जीवनक्रम में इससे बिल्कुल विरोधी स्थिति देखने में आती है। जो मानसिक कार्यों को करते हैं वे चाहे दफ्तर के क्लर्क हों या अधिकारी अथवा शिक्षक शारीरिक श्रम से पीछा छुड़ाने की कोशिश करते हैं। यही नहीं मानसिक योग्यताओं को उभारने का अतिरिक्त श्रम करने से भी जी चुराने की कोशिश में रहते हैं। कोल्हू के बैल की तरह ढर्रे-ढर्रे में चलती हुई जिन्दगी चालीस-पचास की वय तक पहुँचते-पहुँचते तकरीबन इतनी ही बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं!

यही दशा शारीरिक मेहनत करने वालों की है। इनकी शिकायत यह रहती है हाड़-तोड़ परिश्रम के बाद भी चैन नहीं नसीब होता। कारणों की तह में जाने पर बात साफ हो जाती है। रिक्शे ताँगे वाले भी लगभग तीस-चालीस रुपया नित्य कमा लेते हैं। चार अंकों की मासिक आय उन्हें मध्यमवर्ग में ला सकती है। फिर भी वे गरीब के गरीब क्यों बने रहते हैं? इसका कारण है सही नियोजन क्षमता का अभाव दूसरे अर्थों में मानसिक लकवा। उनका जीवन मूल्य, सही जिन्दगी जीने की रीति-नीति सीखने की तरफ ध्यान ही नहीं है। चिन्तन को विकसित करने के प्रयास के बदले उसे भुलने की कोशिश की जाती है। परिणाम भी तदनुरूप होते हैं। पशुवत जिन्दगी बीतती रहती है।

प्रतिभावान बनें, इसके लिए अनिवार्य है कि चिन्तन और क्रिया दोनों ही पक्षों में सामंजस्य उपजे। अँग्रेजी विचारक पैटनहूड के शब्दों में "इस तरह की सन्तुलित श्रमनिष्ठा जिस गति से बढ़ती है जीवन में एक अलौकिक निखार आने लगता है। इसे एक बार समझ लिया जाय फिर तो वह आदत बन जाती है। दूसरे लोग भले ही उसे देखकर घबराएँ पर वह हमारी ग्रीवा में पुष्पाहार की तरह सुशोभित हो जाती है।"

यों व्यावहारिक जीवन में सदैव एक पक्ष प्रधान होगा। पर श्रम से आजीविका कमाने वाले भी यदि चिन्तन के विकास में जुटें, कर्तव्यों एवं जीवन मूल्यों को जानने के लिए अध्ययन करें, अपने ही कार्य की बारीकी जानने का प्रयास करें तो उपजी सूझ-बूझ तथा व्यवस्थित जीवनक्रम उन्हें सामान्य से असामान्य बना देता है। इस तरह मानसिक श्रम प्रधान जीवन वाले व्यक्ति शारीरिक मेहनत करने लगें भले ही उसका स्वरूप बागवानी, व्यायाम, खेलकूद क्यों न हो? इस तरह की उपजी आदत के फल स्वरूप रोग-कष्ट काफूर हो जायेंगे? अभी तक जिन कार्यों को नहीं सम्पन्न किया जा सका तुरत-फुरत पूरे होने लगेंगे।

लालबहादुर शास्त्री जिन दिनों भारत के प्रधान मंत्री थे। उन दिनों अक्सर उन्हें विदेश जाना पड़ता था। बड़े आदमियों के लिए कीमती कपड़े आवश्यक समझे जाते हैं।

शास्त्री जी के पास पुराना कोट था। सेक्रेटरी ने नया सिलवाने का अनुरोध किया। पर शास्त्री जी ने पुराने कोट को ही उलटवाकर दुबारा सिलवा लिया देशवासियों की स्थिति को देखते हुए उन्हें बचत का पूरा ध्यान रहता था। निजी कार्यों में विशेष रूप से।

सन्तुलित श्रम निष्ठा के महत्व को समझा जाय। हमारा जीवन पक्षाघात के रोगी की तरह न रहे। चिन्तन व क्रियाशीलता दोनों को ही उत्तरोत्तर विकसित करने की रुचि जगाई जा सके तो होने वाले परिणामों को देख चमत्कृत होना पड़ेगा। समूचे व्यक्तित्व का कायाकल्प हो सकेगा। अभी तक की अनगढ़ता के पीछे छुपा प्रतिभाशाली सामर्थ्यवान निज का स्वरूप उभर कर आ सकेगा। जीवन के इस अलौकिक रहस्य को जानें समझें और आचरण में लाएँ तो हम स्वयं को समाज की अग्रिम पंक्ति में पाएँगे। यह एक प्रकार की जीवन साधना है पर प्रत्यक्ष फल देने वाली चमत्कारी विधा है। यह तथ्य स्मरण रहा तो सिद्धियों की खोज में इधर-उधर न भटक कर हम जीवन देवता रूपी जिन्न को ही साधने का प्रयास करेंगे यही तो नियन्ता को भी प्रिय है।

*

पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी:—

परम पूज्य गुरुदेव का गुरुपूर्णिमा प्रवचन

पूज्य गुरुदेव की लेखनी के साथ–साथ अमृतवाणी का लाभ भी सबको मिले, इसी उद्देश्य से जुलाई माह के इस अंक में गुरुपूर्णिमा पर्व की वेला में उनके द्वारा शांतिकुंज हरिद्वार में २० जुलाई १९७८ को दिया गया एक विशिष्ट प्रवचन यहाँ परिजनों के लिए प्रस्तुत है । जुलाई ९१ अंक से आरंभ हुआ यह क्रम आगे भी चलता रहेगा ।

प्रस्तुत उद्‌बोधन आज की दृष्टि से इतना ही सामयिक है जितना कि उस समय था । परमसत्ता से प्रार्थना है कि हमारी श्रद्धा व समर्पण का परिमाण नित्य–सतत् बढ़ता रहे ।

गायत्री मंत्र हमारे साथ–साथ बोलिए–

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

देवियो एवं सज्जनो ,

इस संसार में कुल मिलाकर तीन शक्तियाँ हैं, तीन सिद्धियाँ हैं । इन्हीं पर हमारा सारा जीवन व्यापार चल रहा है । लाभ सुख जो भी हम प्राप्त करते हैं इन्हीं तीन शक्तियों के आधार पर हमें मिलते हैं । पहली शक्ति है श्रम की शक्ति, शरीर के भीतर की शक्ति भगवान की दी हुई । इससे हमें धन व यश मिलता है । जमीन पहले भी थी, अभी भी है । यह मनुष्य का श्रम है । जब वह लगा तो वह सोना धातुएँ अनाज उगलने लगी । जितना भी सफलताओं का इतिहास है, वह आदमी के श्रम की उपलब्धियों का इतिहास है । यही सांसारिक उन्नति का इतिहास है ।

जमीन कभी ब्रह्माजी ने बनायी होगी तो ऐसी ही बनायी होगी जैसा कि चन्द्रमा है । यहाँ गड्ढा–वहाँ खड्डा-- सब ओर यही । श्रम ने धरती को समतल बना दिया । नदियाँ चारों ओर उत्पात मचा देती थीं । जलप्लावन से प्रलय सी आ जाती थी । रास्ते बन्द हो जाते थे । व्याह शादियाँ भी बन्द हो जाती थीं, उन चार महीनों में जिन्हें चातुर्मास कहा जाता है सुना होगा आपने नाम । आदमी जहाँ थे, वहीं कैद हो जाते थे । यह आदमी का श्रम है आदमी की मशक्कत है कि आदमी ने पुल बनाए, नाव बनायी, बाँध बनाए । अब वह बंधन नहीं रहा । सारी मानव जाति श्रम पर टिकी है आदमी का श्रम, जिसकी हम अवज्ञा करते हैं । दौलत हमेशा आदमी के पसीने से निकली है । आपको सम्पदा के लिए कहीं गिड़गिड़ाने नाक रगड़ने की जरूरत नहीं है । एक ही देवता है–श्रम का देवता । वही देवता आपको दौलत दिला सकता है । उसी की आपको आराधना–उपासना करना चाहिए ।

माना कि आपके बाप ने कमाकर रख दिया है, पर बिना श्रम के उसकी रखवाली नहीं हो सकती । श्रम कमाता भी है, दौलत की रखवाली भी करता है । हम श्रम का महत्व समझ सकें उसे नियोजित कर सकें तो हम निहाल हो सकते हैं । मात्र सम्पत्तिवान–समृद्ध ही नहीं हम अन्यान्य दौलत के भी अधिकारी हो सकते हैं । सेहत मजबूती श्रम से ही आती है । शिक्षा, कला–कौशल, शालीनता, लोक व्यवहार में पारंगतता श्रम से ही प्राप्त होती है । बेईमानी से चालाकी से आदमी दौलत की छीन झपट मात्र कर सकता है, पर उसे कमा नहीं सकता । आप यदि फसल बोना चाह रहे हैं तो बीज बोइए । यदि चालाकी करें, बीज खा

भावना दिशा देती है और श्रद्धा से प्रकाश मिलता है । केवल तर्क का आश्रय लेने वाला तो झाड़–झंखाड़ों में भटकता है ।

जायें तो कुछ नहीं होने वाला । हर आदमी को ईमानदारी से श्रम किये जाने की मशक्कत की कीमत समझाइए । सम्पदा अभीष्ट हो, विनिमय करना चाहते हों तो कहिए श्रमरूपी पूँजी अपने पास रखें । उसका सही नियोजन करिए । यह है दौलत नंबर एक ।

दो नंबर की दौलत है हमारी ज्ञान की, विचार करने की शक्ति । हमें जो भी प्रसन्नता मिलती है इसी ज्ञान की शक्ति से मिलती है , खुशी दिमागी बैलेन्स से प्राप्त होती है । यह बाहर से नहीं आती, भीतर से प्राप्त होती है । जब हमारा मस्तिष्क संतुलित होता है तो हर परिस्थिति में हमें चारों ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता दिखाई देती है । घने बादल दिखाई देते हैं तो एक सोच सकता है कि कैसे काले मेघ आ रहे हैं अब बरसेंगे । दूसरा सोचने वाला कह सकता है कि कितनी सुन्दर मेघमालाएँ चली आ रही हैं । यह है प्रकृति का सौन्दर्य ।

हम गंगोत्री जा रहे थे । चारों ओर सुनसान डरावना जंगल था । जरासी पत्तों की सरसराहट हो तो लगे कि साँप है । हवा चले, वृक्षों के बीच सीटी सी बजे तो लगे कि भूत है । अच्छे खासे मजबूत आदमी के नीरव एकाकी वियाबान में होश उड़ जायें । पर हमने उस सुनसान में भी प्रसन्नता का स्रोत ढूँढ़ लिया । "सुनसान के सहचर " हमारी लिखी किताब आपने पढ़ी हो तो आपको पता चलेगा कि हर लमहे को जिया जा सकता है प्रकृति के साथ एकात्मता रखी जा सकती है । अब हम बार-बार याद करते हैं उस स्थान की जहाँ हमारे गुरु ने हमें पहले बुलाया था । अब तो हम कहीं जा भी नहीं पाते पर प्रकृति के सान्निध्य में अवश्य रहते हैं । हमारे कमरे में आप चले जाइए । आपको सारी नेचर की , प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों की तस्वीरें वहाँ लगी मिलेंगी । बादलों में, झील में, वृक्षों के झुरमुटों, में झरनों में से खुशी छलकती दिखाई देती है । वहाँ कोई देवी-देवता नहीं है, मात्र प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों की तस्वीरें हैं । हमें उन्हीं को देखकर अंदर से बेइन्तिहा खुशी मिलती है ।

जीवन का आनन्द सदैव भीतर से आता है । यदि हमारे सोचने का तरीका सही हो तो बाहर जो भी क्रियाकलाप चल रहे हों, उन सभी में हमको खुशी ही खुशी बिखरी दिखाई पड़ेगी । बच्चों को देखकर, धर्मपत्नी को देखकर अंदर से आनन्द आता है । सड़क पर चल रहे क्रियाकलापों को देखकर आप आनन्द लेना सीख लें यदि आपको सही विचारणा की शक्ति मिल जाए । स्वर्ग आप चाहते हैं तो स्वर्ग के लिए मरने की जरूरत नहीं है , मैं आपको दिला सकता हूँ । स्वर्ग दृष्टिकोण में निहित है । इन आँखों से देखा जाता है। देखने को "दर्शन" कहते हैं । दर्शन अर्थात् दृष्टि । दर्शन अर्थात् फिलॉसफी । जब हम किसी बात की गहराई में प्रवेश करते हैं बारीकी मालुम करने का प्रयास करते हैं तब इसे दृष्टि कहते हैं । यही दर्शन है । किसी बात को गहराई से समझने का माद्दा आ गया अर्थात् दर्शन वाली दृष्टि विकसित हो गयी । आपने किताब देखी, पढ़ी पर उस में क्या देखा ? उसका दर्शन आपको समझ में आया या नहीं सही अर्थों में तभी आपने दृष्टि डाली, यह माना जाएगा ।

दृष्टिकोण विकसित होते ही ऐसा आनन्द ऐसी मस्ती आती है कि देखते ही बनता है । दाराशिकोह मस्ती में डूबते चले गए । जेबुन्निसा ने पूछा "अब्बाजान !

> ***तृष्णा का कोई अन्त नहीं । आकाश की तरह उसके पेट में बहुत कुछ भरा होने पर भी खाली ही रहता है ।***

आपको क्या हुआ है आज । आप तो पहले कभी शराब नहीं पीते थे । फिर यह मस्ती कैसी ? "बोले" बेटी ! आज मैं हिन्दुओं के उपनिषद् पढ़कर आया हूँ । जमीन पर पैर नहीं पड़ रहे हैं । जीवन का असली आनन्द उनमें भरा पड़ा है । बस यह मस्ती उसीकी है ।"

यह है असली आनन्द । मस्ती, खुशी, स्वर्ग हमारे भीतर से आते हैं । स्वर्ग सोचने का एक तरीका है । किताब में क्या है ? वह तो काला अक्षर भर है । हर चीज की गहराई में प्रवेश करने पर जो आनंद-खुशी मिलती है, वह सोचने के तरीके पर निर्भर है । इसी तरह बंधनमुक्ति भी हमारे चिन्तन में निहित है । हमें हमारे चिन्तन ने बाँध कर रखा है । हम भगवान के बेटे हैं । हमारे संस्कार हमें कैसे बाँध सकते हैं । सारा शिकंजा चिन्तन का है । इससे मुक्ति मिलते ही सही अर्थों में आदमी बंधनमुकत हो जाता है । हमारी नाभि में खुशी रूपी कस्तूरी छिपी पड़ी है । ढूँढ़ते हम चारों ओर हैं । हर दिशा से वह आती लगती है पर होती अन्दर है ।

यदि आपको सुख-शांति मुसकराहट चाहिए तो दृष्टिकोण बदलिए । खुशी सब ओर बाँट दीजिए । माँ

को दीजिए–पत्नी को दीजिए मित्रों को दीजिए । राजा कर्ण प्रतिदिन सवामन सोना दान करता था । आपकी परिस्थितियाँ नहीं हैं देने की किन्तु आप सोने से भी कीमती आदमी की खुशी बाँट सकते हैं । आप जानते नहीं हैं, आज आदमी खुशी के लिए तरस रहा है । जिन्दगी की लाश इतनी भारी हो गयी है कि वजन ढोते–ढोते आदमी की कमर टूट गयी है । वह खुशी ढूँढ़ने के लिए सिनेमा, क्लब, रेस्टॉरेण्ट, कैबरे डांस सब जगह जाता है पर वह कहीं मिलती नहीं । खुशी दृष्टिकोण है, जिसे मैं ज्ञान की सम्पदा कहता हूँ । जीवन की समस्याओं को समझकर अन्यान्य लोगों से जो डीलिंग की जाती है वह ज्ञान की देन है । वही व्यक्ति ज्ञानवान होता है जिसे खुशी तलाशना व बाँटना आता है । ज्ञान पढ़ने लिखने को नहीं कहते । वह तो कौशल है । ज्ञान अर्थात् नजरिया, दृष्टिकोण, व्यावहारिक बुद्धि ।

मैंने आपको दो शक्तियों के बारे में बताया । पहली श्रम की शक्ति जो आपको दौलत, कीर्ति, यश देती है । दूसरी विचारणा की शक्ति जो आपको प्रसन्नता व सही दृष्टिकोण देती है । तीसरी शक्ति रूहानी है । वह है आदमी का व्यक्तित्व । व्यक्ति का वजन । कुछ आदमी रुई के होते हैं व कुछ भारी । जिनकी हैसियत वजनदार व्यक्तित्व की होती है, वे जमाने को हिलाकर रख देते हैं । कीमत इनकी करोड़ों की होती है । वजनदार आदमी यदि हिन्दुस्तान की तवारीख से काट दें तो इसका गर्क हो जाय । जिसके लिए हम फूले फिरते हैं, वह वजनदार आदमियों का इतिहास है । वजनदारों में बुद्ध को शामिल कीजिए । वे पढ़े लिखे थे कि नहीं किन्तु वजनदार थे । हजारों सम्राटों ने, दौलतमन्दों ने थैलियाँ खाली कर दीं । बुद्ध ने जो माँगा वह उनने दिया । हरिश्चन्द्र, सप्तर्षि, व्यास, दधीचि, शंकराचार्य, गाँधी, विवेकानन्द के नाम हमारी कौम के वजनदारों में शामिल कीजिए । इन्हीं पर हिन्दुस्तान की हिस्ट्री टिकी हुई है । यदि इन्हें खरीदा जा सका होता तो बेशुमार पैसा मिला होता ।

आदमी की कीमत है उसका व्यक्तित्व । ऐसे व्यक्ति दुनिया की फिजां को बदलते हैं, देवताओं को अनुदान बरसाने के लिए मजबूर करते हैं । पेड़ अपनी आकर्षण शक्ति से बादलों को खींचते व बरसने के लिए मजबूर करते हैं । वजनदार आदमी अपने व्यक्तित्व की मैग्नेट की शक्ति से देव शक्तियों को खींचते हैं । यदि आप भी दैवी अनुदान चाहते हों तो आपको व्यक्तित्व को वजनदार बनाना होगा । दैवी शक्तियाँ सारे ब्रह्माण्ड में छिपी पड़ी हैं । सिद्धियाँ जो आदमी को देवता महामानव ऋषि बनाती हैं, सब यहीं हमारे आसपास हैं । कभी इस धरती पर तैंतीस कोटि देवता बसते थे । सभी व्यक्तित्ववान थे । व्यक्तित्व एक बेशकीमती दौलत है, यह तथ्य आप समझिए । व्यक्तित्व सम्मान दिलाता है, सहयोग प्राप्त कराता है । गाँधी को मिला क्योंकि उनके पास वजनदार व्यक्तित्व था ।

व्यक्तित्व श्रद्धा से बनता है । श्रद्धा अर्थात् सिद्धान्तों व आदर्शों के प्रति अटूट व अगाध विश्वास । आदमी आदर्शों के तई मजबूत हो जाता है तो व्यक्तित्व ऐसा वजनदार बन जाता है कि देवता तक नियंत्रण में आ जाते हैं । विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस की शक्ति पाई क्योंकि स्वयं को वजनदार वे बना सके । भिखारी को दस पैसे मिलते हैं । कीमत चुकाने वाले को वजनदार व्यक्तित्व वाले को सिद्ध पुरुष का आशीर्वाद मिलता है ।

दुनिया क्या कहेगी । इस प्रश्न को ध्यान में रखने का नाम कौशल है । भगवान क्या कहेंगे ? इस प्रश्न को आगे रखकर चलने का नाम कर्तव्य है ।

यदि आप किसी आशीर्वाद की कामना से, देवी देवता की सिद्धि की कामना से यहाँ आए हैं तो मैं आप से कहता हूँ कि आप अपने व्यक्तित्व को विकसित कीजिए ताकि आप निहाल हो सकें । दैवी कृपा मात्र इसी आधार पर मिल सकती है और इस के लिए माध्यम है श्रद्धा । श्रद्धा मिट्टी से गुरु बना देती है । पत्थर से देवता बना देती है । एकलव्य के द्रोणाचार्य मिट्टी की मूर्ति के रूप में उसे तीरंदाजी सिखाते थे । रामकृष्ण की काली भक्त के हाथों भोजन करती थी । उसी काली के समक्ष जाते ही विवेकानन्द नौकरी–पैसा भूलकर शक्ति–भक्ति माँगने लगे थे । आप चाहें मूर्ति किसी से भी खरीद लें । मूर्ति बनाने वाला खुद अभी तक गरीब है । पर मूर्ति में प्राण श्रद्धा से आते हैं । हम देवता का अपमान नहीं कर रहे । हमने खुद पाँच गायत्री माताओं की मूर्ति स्थापित की हैं, पर पत्थर में से हमने भगवान पैदा किया है श्रद्धा से । मीरा का गिरधर गोपाल चमत्कारी

था। विषधर सर्पों की माला, जहर का प्याला उसी ने पीलिया व भक्त को बचा लिया। मूर्ति में चमत्कार आदमी की श्रद्धा से आता है। श्रद्धा ही आदमी के अंदर से भगवान पैदा करती है।

श्रद्धा का आरोपण करने के लिए ही यह गुरुपूर्णिमा का त्यौहार है। श्रद्धा से हमारे व्यक्तित्व का सही मायने में उदय होता है। मैं अंध श्रद्धा की बात नहीं करता। उसने तो देश को नष्ट कर दिया। श्रद्धा अर्थात् आदर्शों के प्रतिनिष्ठा। जितने भी ऋषि संत हुए हैं उनमें श्रेष्ठता के प्रति अटूट निष्ठा देखी जा सकती है। जो कुछ भी आप हमारे अंदर देखते हैं, वह श्रद्धा का ही चमत्कार है। आज से ५५ वर्ष पूर्व हमारे गुरु की सत्ता हमारे पूजाकक्ष में आयी। हमने सिर झुकाया व कहा कि आप हुक्म दीजिए, हम पालन करेंगे। अनुशासन व श्रद्धा–गुरुपूर्णिमा इन दोनों का त्यौहार है। अनुशासन–आदर्शों के प्रति। यह कहना कि जो आप कहेंगे वही करेंगे। श्रद्धा अर्थात् प्रत्यक्ष नुकसान दीखते हुए भी आस्था, विश्वास, आदर्शों को खोना। श्रद्धा से ही सिद्धि आती है। हमें अपने आप पर घमण्ड नहीं है पर विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि यह देवशक्तियों के प्रति हमारी गहन श्रद्धा का ही चमत्कार है जिसके बलबूते हमने किसी को खाली हाथ नहीं जाने दिया। गायत्री माता श्रद्धा में से निकलीं। श्रद्धा में मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं व सिद्धान्तों का संरक्षण करना पड़ता है। हमारे गुरु ने कहा–संयम करो, कई दिक्कते आएँगी पर उनका सामना करो। हमने चौबीस वर्ष तक तप कया। जायके को मारा। हम जौकी रोटी खाते। हमारी माँ बड़ी दुखी होती। हमारी तपस्या की अवधि में उनने भी हमारी वजह से कभी मिठाई का टुकड़ा तक न चखा। हमारे गायत्री मंत्र में चमत्कार इसी तप से आया।

आप चाहते हैं कि आपको कुछ मिले। तो वजन उठाइए। हम आपको मुफ्त देना नहीं चाहते। क्योंकि इससे आपका अहित होगा। वह हम चाहते नहीं। आप हमारा कहना मानें तो हम देने को तैयार हैं। गुरु–शिष्य की परीक्षा एक ही कि अनुशासन मानते हैं हम आपके शिष्य ऐसा कहें व मानें। समर्थ ने अपने शिष्य की परीक्षा ली थी व सिंहनी का दूध लाने को कहा था अपनी आँख की तकलीफ का बहाना करके सिंहनी कहाँ थी। वह तो हिप्नोटिज्म से एक सिंहनी खड़ी कर दी थी। शिवाजी का संकल्प था दृढ़ वे ले आए सिंहनी का दूध व अक्षय तलवार का उपहार गुरु से पा सके। राजा दिलीप की गायों को जब 'माया के सिंह ने पकड़ लिया तो उनने स्वयं को सौंप दिया। इस स्तर का समर्पण हो तो ही गुरु की शक्ति-दैवी अनुदान मिलते हैं। यह आस्थाओं का इम्तिहान है जो हर गुरु ने अपने शिष्य का लिया है।

श्रद्धा अर्थात् सिद्धान्तों का भावनाओं का आरोपण! कहा गया है "भावे न विद्यतो देव तस्मात् भावो हि कारणम्" भावना का आरोपण करते ही भगवान प्रकट हो जाते हैं। भगवान अर्थात् सिद्धि। हर आशीर्वाद सिद्धि का आधार, फीस एक ही है–श्रद्धा। उसे विकसित करने के लिए अभ्यास हेतु गुरुपूर्णिमा पर्व। गुरुतत्व के प्रति श्रद्धा का अभ्यास आज के दिन किया जाता है। गुरु अन्तरात्मा की उस आवाज का नाम है जो भगवान की गवर्नर है हमारी सत्ता उसी को समर्पित है। वही हमारी सद्गुरु है। गुरु को

> ***सोने की चार तरह परीक्षा की जाती है। काटकर, तपाकर घिसकर और पीटकर। आदमी की भी चार तरह परीक्षा होती है त्याग, शील, गुण, और कर्म से।***

ब्रह्मा कहा गया है अर्थात् हमारी सुपर कांशसनेस हमारा अतिमानस। अच्छा काम करते ही यह हमें शाबाशी देता है। गलत काम करते ही धिक्कारता है। गुरु ही ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश है। गुरु अर्थात् भगवान का प्रतिनिधि। गुरु को जाग्रत–जीवन्त करने के लिए एक खिलौना बनाकर श्रद्धा का आरोपण हम जिस पर भी करते हैं, वही गुरु बन जाता है। इसमें दोनों बातें हैं। मानवी कमजोरियाँ भी हो सकती हैं। उनको न देखकर हम अच्छाइयों के प्रति श्रद्धा विकसित करें। आप हमें मानते हैं तो हमारा चित्र देखते ही श्रेष्ठतम पर विश्वास करने का अभ्यास करें। यह एक व्यायाम है, रिहर्सल है। इसी के आधार पर हम अपने अंदर का सुपरचेतन जगाते हैं। प्रतीक की आवश्यकता इसी कारण पड़ती है।

हमारी अटूट श्रद्धा की प्रतिक्रिया लौट कर हमारे पास ही आ जाती है। एक शिष्य गुरु के चरणों की धोवन को श्रद्धापूर्वक दुखी–कष्ट पीड़ितों को देता था। सब ठीक हो जाते थे। पर जब गुरु ने उसी धोवन का चमत्कार जान कर अपने पैरों को जल से

धोकर वह जल औरों को दिया । तो कुछ भी न हुआ दोनों जल एक ही हैं । पर एक में श्रद्धा का चमत्कार है । उसी कारण वह अमृत बन गया । जब कि दूसरा मात्र धोवन का जल रह गया है । श्रद्धा आध्यात्मिक जीवन का प्राण है, रीढ़ है । देवपूजन आपको सफलता की कामना से करना हो तो श्रद्धा विकसित करके कीजिए । साधनाएँ मात्र क्रिया हैं यदि उनमें श्रद्धा का समन्वय नहीं है । आदमी की जो भी कुछ आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हैं, वे श्रद्धा पर टिकी हैं । आपकी अपने प्रति यदि श्रेष्ठ मान्यता है, आपकी श्रद्धा वैसी है तो असल में वही हैं आप । यदि इससे उलटा है तो वैसे ही बन जाएँगे आप । गुरुपूर्णिमा श्रद्धा के विकास का त्यौहार है । हमारे गुरु ने अनुशासन की कसौटी पर कसकर हमें परखा है तब दिया है । हमारे जीवन की हर उपलब्धि उसी अनुशासन की देन है । वेदों के अनुवाद से लेकर ब्रह्मवर्चस् के निर्माण तथा चार हजार शक्ति पीठों को खड़ा करने का काम एक ही बलबूते हुआ—गुरु ने कहा कर । हमने कहा,'करिष्ये वचनं तव'। गुरु श्रीकृष्ण के द्वारा गीता सुनाये जाने पर शिष्य अर्जुन ने यही कहा कि सारी गीता सुन ली । अब जो आप कहेंगे, वही करूँगा ।

आज गुरुपूर्णिमा का त्यौहार है । हम आपको बता रहे हैं कि भगवान का नया अवतार होने जा रहा है । आज की परिस्थितियों के अनुरूप यह अवतार है । जब—जब दुष्टता बढ़ती है तब—तब देश काल की परिस्थितियों के अनुरूप भगवान अवतार के रूप में जन्म लेते हैं । आज आस्थाओं में, जन—जन के मन—मन में असुर घुस गया है । इसे विचारों की विकृति कह सकते हैं । एक किश्त आज के अवतार की आज से २५०० वर्ष पूर्व बुद्ध के रूप में विचारशीलता के रूप में आयी थी । वही प्रज्ञा की, विवेक की, विचारों की अब पुनः आयी है । वह है गायत्री मंत्र ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में । यह अवतार जो आ रहा है विचारों के संशोधन रूप में दिमागों में ही नहीं, आस्थाओं में भी हलचलें पैदा करेगा । विचार क्रान्ति के रूप में जो आ रही है वह युगशक्ति गायत्री है । यह तूफान आँधी के रूप में आ रहा है । यह गायत्री हिदुस्तान मात्र की नहीं सारे विश्व की है । नये विश्व की माइक्रोफिल्म इसमें छिपी पड़ी है । गायत्री मंत्र विश्व मंत्र है । व्यक्ति का अंतस व बहिरंग बदलने वाले बीज इस मंत्र के अंदर छिपे पड़े हैं । यदि आपको यह बात समझ में आ गयी तो आप हमारे साथ नवयुग का स्वागत करने में जुट जाएँगे । हम अपने लिए एक ही नाम बताते हैं—मुर्गा । मुर्गा वह जो प्रभात के आगमन का उद्घोष करता है । गायत्री ने हमें फिर मुर्गा बना दिया है । आइये जोर से उद्घोष करें कि नव प्रभात आ रहा है नया युग आ रहा है युगशक्ति का अवतरण हो रहा है । कुकुड़ूकूँ ...। यह तो मुर्गा करता है । हम नये युग की अगवानी करें ।

हम गायत्री की फिलासफी व युग के देवता विज्ञान की बात आपको बताते आए हैं । यह ब्रह्म विद्या घर—घर पहुँचे, इसमें आप सबका सहयोग चाहते हैं । जैसे सेतुबंध के लिए, गोवर्धन के लिए, अवतारों को सहयोग मिला हम भी चाहते हैं कि आप भी इस प्रवाह में सम्मिलित हो जायँ । आपको भी बाद में लगेगा कि हम भी समय पर जुड़ गए होते तो अच्छा रहता । युगशक्ति का उदय एवं अवतरण हो रहा है । आप इस अवतरण में एक हाथ भर लगा दें । आपकी भी गणना युगान्तरकारी पुरुषों में होने लगेगी । आप समय दीजिए , पैसा दीजिए । यह सोचकर नहीं कि हमारा काम रुकेगा । आप अपनी श्रद्धा को परिपक्व करने के लिए जो भी कर सकें वह करिए । हमें देने से हमें गुरुदीक्षा से मतलब है घर घर जन—जन तक गायत्री का सद्ज्ञान पहुँचाने का काम करना । दवा तो हमारे पास है आस्थाओं में छाई विषाक्तता की । आप मात्र सुई बन जाइए । आज की गुरुपूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण समर्पण की युग देवता के काम के लिए खपने की मैं आपसे अपेक्षा रखता हूँ । आशा है आप मेरी इच्छा पूरी करेंगे ।

अंत में यह कामना करते हैं कि जिस श्रद्धा ने हमारा कल्याण किया वह आपका भी कल्याण करे ताकि आप महान बनने के अधिकारी हो सकें । आप सबका कल्याण हो सब स्वस्थ हों सब का समर्पण भाव बढ़ता रहे"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुख माप्नुवात् ।"

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

*

फूल को किसी भी नाम से पुकारने पर उसकी सुगन्ध में अन्तर नहीं पड़ता । भगवान को किसी भी नाम से पुकारो इसमें फर्क क्या पड़ता है ?

"श्रद्धा–संकल्प"

श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ,' हम अर्पित करने आये हैं।
ओ सिंधु अगाध! समपर्ण के, हम विंदु–समर्पण लाये हैं।१।

श्रद्धा के केन्द्र हमारे थे, हम को नवजीवन दान दिया।
आपाद स्वार्थ में डूबे थे, सर्वार्थ भाव का भान दिया।।
जन पीड़ा की अनुभूति करा, संवेदन भाव जगाये हैं।
श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ', हम अर्पित करने आये हैं।।२।।

अब विरह–वेदना से व्याकुल मन को, सहने का बल देना।
अन्तरयामी! अन्तरतम में आकर, स्नेहित संबल देना।।
हम को प्रतिपल यह अनुभव हो, अन्तर में आप समाये हैं।
श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ', हम अर्पित करने आये हैं।।३।।

जन मंगल में जुट जाने का, बनकर संकल्प मचल उठना।
युग पीड़ा को पी जाने हित, प्राणों में आप उछल उठना।।
मानवता पीड़ित पीड़ा से, उसने आँसू छलकाये हैं।
श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ, हम अर्पित करने आये हैं।।४।।

हम युग स्रष्टा के वंशज हैं, संदर्भ कहीं बदनाम न हो।
हम महाप्राण के अंशज हैं, सम्पर्क कहीं नाकाम न हो।।
श्रद्धांजलि में 'संकल्प–सुमन' हमने गुरुदेव! चढ़ाये हैं।
श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ' हम अर्पित करने आये हैं।।५।।

'उज्ज्वल–भविष्य का संदेशा, हम जन जन तक पहुँचायेंगे।
जो 'ज्ञान–मशाल' थमाई है, उसको घर घर पहुँचायेंगे।।
ले शपथ आपकी पीड़ा की, संकल्प यही दोहराये हैं।
श्रद्धा निधि को 'श्रद्धांजलियाँ,' हम अर्पित करने आये हैं।।६।।

—मंगल विजय

युग–दधीचि को गुरुपर्व पर श्रद्धांजलि

सं० २०४८ के इस गुरुपूर्णिमा के पावन–पर्व पर जिस तत्व को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए हम अपने श्रद्धासुमन चढ़ा रहे हैं, उनके जीवन के अनेकानेक प्रसंग सहज ही मस्तिष्क पटल पर आ जाते हैं। एक विद्युत की तरह अनेकानेक यादें कौंधने लगती हैं व हमें एहसास कराती हैं कि एक युगांतरकारी व्यक्तित्व का सान्निध्य, जीवन में स्पर्श पाकर हम सब किस प्रकार धन्य हो गए।

गुरु शब्द भौतिकी के परिप्रेक्ष्य में भारीपन के लिए प्रयुक्त होता है। वजनदार भारी व्यक्तित्व से संपन्न, महा... के अंधकार से अनेकों को त्राण दिलाकर श्रेष्ठता पर चलने वाले पथ को दिखाने वाली दैवी सत्ता गुरु कहलाती है। गुरु वह जो आत्म सत्ता के व परमात्म सत्ता के मिलन में सहायक हो, जो गोबिन्द अर्थात् ईश्वरीय सत्ता से साक्षात्कार कराती हो।

आज मनुष्य के पास सभी कुछ है वैभव, समर्थता कला कौशल, पर जो नहीं है वही मानव जाति के पतन का निमित्त कारण भी है। वह है सही चिन्तन पद्धति का न होना व उसी के कारण जीवन जीते हुए भी उस जीने की कला से अनभिज्ञ होते हुए महज काटते भर रहना। ऐसी स्थिति में यदि किसी सत्ता का अनायास हमारे जीवन में उदय हो व हमें उँगली पकड़ कर वह सही राह पर ला खड़ा कर दे तो इसे परम सौभाग्य ही मानना चाहिए। आज सारी सुविधाएँ बाजार में उपलब्ध हैं, मात्र सच्चे मार्ग दर्शकों की, मित्रों की कमी है, वरन् अकाल है। यदि सच्चा पथप्रदर्शक एक हित सोचने वाला मित्र मिल जाय तो दुरूह कण्टकों से भरा जीवन पथ पार करने में कोई हिचक नहीं लगती। एक ऐसी ही मित्र सत्ता के रूप में हमारे बीच परम पूज्य गुरुदेव का आगमन हुआ।

अनेकानेक पत्रों में से जो उनके द्वारा समय–समय पर परिजनों को लिखे गए, एक पत्र को उद्धृत करने का यहाँ मन हो रहा है।

हमारे आत्म स्वरूप,

आपके कुशल समाचार पढ़कर प्रसन्नता हुई। हमारा शरीर नहीं, अन्तःकरण ही श्रद्धा के योग्य है। आप हमारी भावनाओं को सुविस्तृत करके हमारी सच्ची सहायता और प्रसन्नता का माध्यम बनते हैं। आपके ब्राह्मण शरीर से जीवन भर ऋषि कार्य ही होते रहेंगे और आप पूर्णता का लक्ष्य इसी जन्म में प्राप्त करेंगे, ऐसा विश्वास है। उस क्षेत्र में आप अपने संकल्प द्वारा प्रकाशवान सूर्य की तरह चमकें और असंख्यों का कल्याण करें, ऐसी कामना है।"

यहाँ पत्र में दिय गए शब्दों पर यदि ध्यान गहराई से दिया जाय तो भलीभाँति समझ में आता है कि व्यक्ति के रूप में शरीर की नहीं, विचारों–भावनाओं की श्रेष्ठता को मानते हुए उसे ही अपना इष्ट लक्ष्य मानकर उसकी प्राप्ति हेतु पुरुषार्थरत रहने की प्रेरणा वे सदा परिजनों को देते रहे। आप हम नितान्त उलटा देखते हैं। धर्माचार्य तो अनेक हैं पर श्रद्धायोग्य अन्तःकरण किस के पास है? यदि यही सब देखकर मन नास्तिकता की ओर मुड़ जाय तो गलत क्या है? गुरुतत्व के प्रति कैसी, किस स्तर की किस प्रकार की घनिष्ठतम आस्था होनी चाहिए, पत्र की प्रथम पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं।

भगवान की प्रसन्नता भौतिक साधनों से नहीं उनके कार्य को आगे बढ़ाने में निहित है। गुरुसत्ता यही कराती है, सतत् प्रेरणा देती है कि पीड़ित पतित मानवता के उत्थान के लिए सतत् प्रयास चलते रहें। समर्थ रामदास इसी कार्य के लिए शिवाजी को शक्ति देते हैं। रामकृष्ण परमहंस इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए विवेकानन्द पर अपनी सारी सामर्थ्य उड़ेल देते हैं तथा विरजानन्द अपनी ज्ञान सम्पदा से लेकर संचित शक्ति दयानन्द को वितरित कर देते हैं। यह शाश्वत गुरु–शिष्य की लेनदेन परम्परा है। गुरु को भावनाओं की उत्कृष्टता का उपहार चाहिए, और कुछ नहीं। वे बदले में मनोबल बढ़ाते हैं, आत्मबल को उछाल देते हैं व सामान्य से मानव से असंभव दीख पड़ने वाले पुरुषार्थ करा लेते हैं। व्यक्ति औरों के बलबूते नहीं, अपने संकल्पबल की ताकत से असंख्यों को प्रकाश दिखाने वाले सूर्य की तरह चमके –अज्ञान का अंधकार मिटाए, इससे बड़ा आशीर्वाद और क्या हो सकता है?

प्रत्यक्ष धन-संपत्ति, पुत्र-पुत्री नौकरी वरदान रूप में चाहने वालों को यह लग सकता है कि यह वरदान कुछ समझ में नहीं आया पर आत्म संतोष, लोक सम्मान व दैवी अनुग्रह की त्रिवेणी में स्नान कर उसका महत्व समझने वाला फिर और कोई क्षुद्र चाह नहीं रखता।

सबसे बड़ा अनुदान पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में आने वालों को जो मिला वह था विवेकशीलता का जागरण, दृष्टिकोण का परिष्कार। यही सही अर्थों में गुरु का शिष्य पर शक्तिपात है, यदि भ्रान्तियों से मुक्ति मिल जाए व इनसे उबर कर जीने की नई दृष्टि विकसित हो जाए तो जीवन में आनन्द आ जाता है। उनके सान्निध्य में आने वाले वे सब जिनके सोचने का तरीका बदला जानते हैं कि एक प्रकार से उनका कायाकल्प हो गया। सांसारिक दृष्टिकोण रखते हुए अध्यात्म मूल्यों को जीवन में कैसे प्रविष्ट किया जा सकता है, यह उनने धीरे-धीरे शिक्षण दिया। सामान्यतया मनुष्य अतिवादी होते हैं। या तो वे भौतिकवाद के एक सिरे पर प्रगति करते दीखेंगे अथवा वैराग्य के शीर्ष की ओर मुड़ जाएँगे। परमपूज्य गुरुदेव ने बीच का मार्ग सुझाया अध्यात्मवादी भौतिकता का। उनने कभी भौतिकवादी जीवन की उपेक्षा किये जाने की बात नहीं की। सतत् जोर इसी बात पर दिया कि जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाले विचारों व मूल्यों को इसी हमारे दैनन्दिन जीवन में न्यूनाधिक रूप में समाविष्ट किया जाता रहे। इसे उनने जीवन साधना नाम दिया। जिन्हें भय था कि उनके परिवारीजन गायत्री परिवार से जुड़कर बैरागी, बाबाजी, पलायनवादी बन जाएँगे, उन्हें उससे मुक्ति मिली व लगा कि उनके लिए भी जीवन को नया मोड़ देने वाला यह मार्ग खुला पड़ा है।

सद्गृहस्थों का निर्माण परमपूज्य गुरुदेव का मानव जाति के लिए किया गया ऐसा महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है, जिसका मूल्यांकन जब भी होगा तो लोग जानेंगे कि कितनी सहजता से एक दूसरे के लिए जीने वाले समर्पण भाव से साथ रहने वाले दम्पत्ति विकसित होते चले गए। पश्चिम का उन्मुक्त भोगवाद स्वच्छन्द यौनाचार व पारिवारिक कलह-विघटन से भरा समाज हमारे अपने देश में भी विकसित हो रहा था। अभी भी बड़े महानगरों में उसको किन्हीं-किन्हीं रूपों में देखा जा सकता है। ऐसे में परस्पर सौहार्द्र बढ़ाते हुए पारिवारिकता के संस्कारों को सींचने हेतु पति-पत्नी दोनों को उद्यत कर देना तथा सतत् प्रेरणा देते रहने का कार्य हमारी गुरुसत्ता ने ६५ वर्षों तक किया। स्वयं वैसा जीवन जिया व अन्यान्यों को प्रेरणा दी। देखते-देखते लाखों परिजनों का एक संस्कारवान परिवार नमूने के रूप में खड़ा हो गया। उसी की छोटी अनुकृति के रूप में शांतिकुंज हरिद्वार, गायत्री तपोभूमि मथुरा का देव परिवार देखा जा सकता है।

किसी महापुरुष का मूल्यांकन लोग उनके चमत्कारी कृत्यों से करते हैं, यह परिपाटी रही है। रामकृष्ण वचनामृत में संभवतः लोगों की रुचि कम होगी पर लीला प्रसंगों में खूब रस आता है। पर रामकृष्ण परमहंस को गहराई से समझने वालों को पता है कि यदि उन्हें जानना है तो कौतूहल वाले प्रसंगों को बाद में पहले उनके अमूल्य विचारों दृष्टांत-कथानक वाली शैली से युक्त प्रतिपादनों को पढ़ा जाना चाहिए। परमपूज्य गुरुदेव का जीवन चमत्कारी प्रसंगों से भरा पड़ा है। उसी के एक हजारवें अंश पर परिजनों ने विगत जून अंक में दृष्टिपात किया है। समय पर श्रद्धा संवर्धन हेतु वह भी जरूरी है किन्तु वही सब कुछ नहीं है। उनने समय-समय पर जो प्रेरणा भिन्न-भिन्न रूपों में देकर व्यक्ति के सोचने की लोक-व्यवहार की शैली जिस प्रकार आमूल चूल बदली वह प्रकरण और बड़ा चमत्कारी है। बीच-बीच में सुधी पाठकों को वह भी देखने को मिलता रहता है। पर तथ्य एक ही समझा जाना चाहिए कि सिद्धि चमत्कार सारे विकसित सम्पन्न व्यक्तित्व में जन्म लेते हैं। जीवन परिष्कार से लेकर सर्वांगपूर्ण विकास के सारे स्वर्णिम सूत्र पूज्यवर के चिन्तन व लेखनी से प्रस्तुत हुए हैं। यदि उन पर अमल किया जा सके तो सारी सिद्धियाँ इसी मस्तिष्क रूपी कल्पवृक्ष से व्यक्तित्व के उद्यान से उपजती रह सकती हैं।

यहाँ पूज्य गुरुदेव द्वारा दिये गए अमूल्य विचार रत्नों में से मात्र एक का ही हवाला व्याख्या सहित देने का लोभ संवरण नहीं हो पा रहा। एक वाक्य जो स्टीकर तथा आदर्श वाक्य के रूप में लोकप्रिय हुआ, पूज्यवर द्वारा १९६६-६७ में दिया गया था —"जीवन्त वे हैं, जिनका मस्तिष्क ठण्डा, रक्त गरम, हृदय कोमल तथा पुरुषार्थ प्रखर है।" इस वाक्य को ध्यान से देखा जाय तो यह एक शोध प्रबन्ध लिखे जाने योग्य है। ग्रंथि रहित आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण जिन सोपानों पर होता है, वे इसमें दिये गए हैं। जीवन्त वे जिनसे कुछ आशा अपेक्षा समाज विश्व मानवता को है। जो ग्रुप लीडर्स बनते हैं व युग नेतृत्व करते हैं। महामानव बनने को इच्छुक ऐसे सभी लोगों के विषय में कहा गया है कि यदि उन्हें निज की प्रगति व समाज देवता की

आराधना अभीष्ट है तो उन्हें चार बातों पर ध्यान देना चाहिए । पहली यह कि उनका मस्तिष्क ठण्डा हो । आज अधिकांश व्यक्तियों के मस्तिष्क गरम हैं , आवेश ग्रस्त हैं । यही कारण है कि परस्पर टकराव देखा जाता है । चिंता, आतुरता, बेचेनी, अनिद्रा ग्रस्त लोगों को देखा जा सकता है । ठण्डा मस्तिष्क अर्थात् संतुलित सोचने का तरीका । कभी भी अहंकार ग्रस्त न होने वाला आवेश में अतिवाद में न आने वाला मस्तिष्क । निन्दा स्तुति से परे ऐसा व्यक्ति जो हर निर्णय सोच समझकर ठण्डे दिमाग से ले । गीता में अनेकानेक दैवी विभूतियों में से एक यह भी है कि व्यक्ति में समस्वरता हो, मनः संतुलन हो । दूसरी बात और महत्वपूर्ण है । ठण्डे मस्तिष्क के साथ यदि रक्त भी ठण्डा हो गया तो व्यक्ति कापुरुष कहलाएगा । रक्त में गरमी अर्थात् सतत् कार्य करने की उमंग, ऊर्जस्विता ,उत्साह, स्फूर्ति तथा अनीति को देखते ही उसे मिटाने का साहस व्यक्ति में होना । ब्राह्मण मस्तिष्क के साथ क्षत्रिय रक्त इसीलिए जरूरी है कि वह व्यक्ति को कर्मठ पुरुषार्थवादी बनाता है ।

तीसरा है हृदय की कोमलता । भाव संवेदना से लिया गया निर्णय ही विवेक युक्त—न्याय के पक्ष वाला निर्णय होता है । हृदय यदि कोमल न हुआ तो समाज में संव्याप्त दुख, दारिद्र्य दैन्य, पतन दिखाई नहीं देंगे व फिर दिशाधारा विलासिता के संचय की ओर होगी । जो भी महामानव, लोक सेवी अवतार हुए हैं वे भाव संवेदना की प्रेरणा से ही श्रेष्ठ पथ पर अग्रगामी हुए हैं । हृदय की कठोरता व्यक्ति को नर पशु बनाती है व कोमलता उसे देवमानव बनाती है । हृदय मात्र मांसपेशियों की स्पन्दन करते रहने वाली एक थैली नहीं है, वह प्रतीक है व्यक्ति के अंदर की उस गंगोत्री की जो करुणा, भावनाओं, संवेदना के रूप में सतत् निस्तृत होती रहती है । जब यह सूख जाती है तो व्यक्ति निष्ठुर, दुर्भावनाग्रस्त, कठोर बन जाता है व अचिन्त्य चिन्तन व न करने योग्य दुष्कर्म करने लगता है ।

जीवन्त व्यक्तित्व की चौथी पहचान है पुरुषार्थ प्रखर होना । यदि उपरोक्त तीन गुण होते हुए भी व्यक्ति भाग्यवादी बना रहा अकर्मण्य रहा तो क्या लाभ ? प्रेरणा उसे ऐसी मिले कि शरीर का पुरजा—पुरजा कट जाए पर वह रण क्षेत्र न छोड़े । दुखी अज्ञानग्रस्त मानव जाति के लिए उसकी मांसपेशियाँ फड़कें व वह रामकृष्ण, बुध, गांधी की तरह उन्हें ऊँचा उठाने के लिए कृत संकल्प हो जाए । कहना न होगा कि जिसमें इन चारों गुणों का समन्वय हो गया, वह व्यक्ति नर मानव के चोले में देव पुरुष बन गया । सारी सफलताओं की जननी ये छोटे—छोटे प्रतीत होने वाले विचार बिन्दु है जिनका जीवन में समावेश काय कल्प वाला परिवर्तन ला देता है ।

हम उस महामानव को श्रद्धा की अथाह गरिमा को, श्रद्धा निधि को आज गुरुपूर्णिमा पर क्या श्रद्धांजलि समर्पित करें ? हम उस युग दधीचि को शक्ति कलश की साक्षी में यही आश्वासन दे सकते हैं कि हम जन मंगल के निमित्त लोक कल्याण के लिए सतत् गलेंगे । हम वह प्रकाशस्तम्भ बनेंगे जो विकराल लहरों से भरे समुद्र में भटकते जहाजों को मार्ग दिखाते हैं । हमसे उनकी अपेक्षाएँ निश्चित ही पूरी होंगी इस आश्वासन के साथ ही हम सब की इस गुरुपर्व पर श्रद्धांजलि चढ़े । *

बिहार प्रान्त में एक किसान था । उसने अपने एक खेत पर आम का बगीचा लगाया । उसकी घनी छाया में गाँव के लोग दुपहरी बिताने के लिए आते । चटनी के लिए कच्चे फल तोड़ ले जाते । पक्षियों के अनेक घोंसले थे । बहुत सुरम्य लगता था वह स्थान ।

किसान का नाम हजारी था । बच्चे बड़े हो गये थे । वे खेतीबाड़ी सँभालने लगे थे । हजारी ने निश्चय किया कि वह शेष जीवन इर्द—गिर्द के इलाके में आम के बगीचे लगवाते रहने में लगाएगा । गाँव गाँव गया । बगीचा लगाने का महत्व बताया । उसके लिए जो तैयार हुए उनके यहाँ अच्छी पौद देने की सहायता की । देख भाल भी वह करता रहा । उसके प्रयत्न से लोगों की रुचि बढ़ी और देखते—देखते सैकड़ों गाँवों में आम्र उद्यान लगाने की होड़ चल पड़ी ।

इस इलाके में प्रायः एक हजार बगीचे लग गये । इसके साथ हजारी किसान का पुरुषार्थ भी जुड़ा हुआ था । इसलिए उस क्षेत्र का नाम हजारी बाग पड़ा । इस नाम का एक जिला अभी भी बिहार प्रान्त में हैं । यह नाम सदा उस पुण्य प्रयास की यश कथा कहता रहता है ।

अखण्ड-ज्योति मासिक
रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८ लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी
रजि० नं० आर. एन. २१९६२/५२ किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त
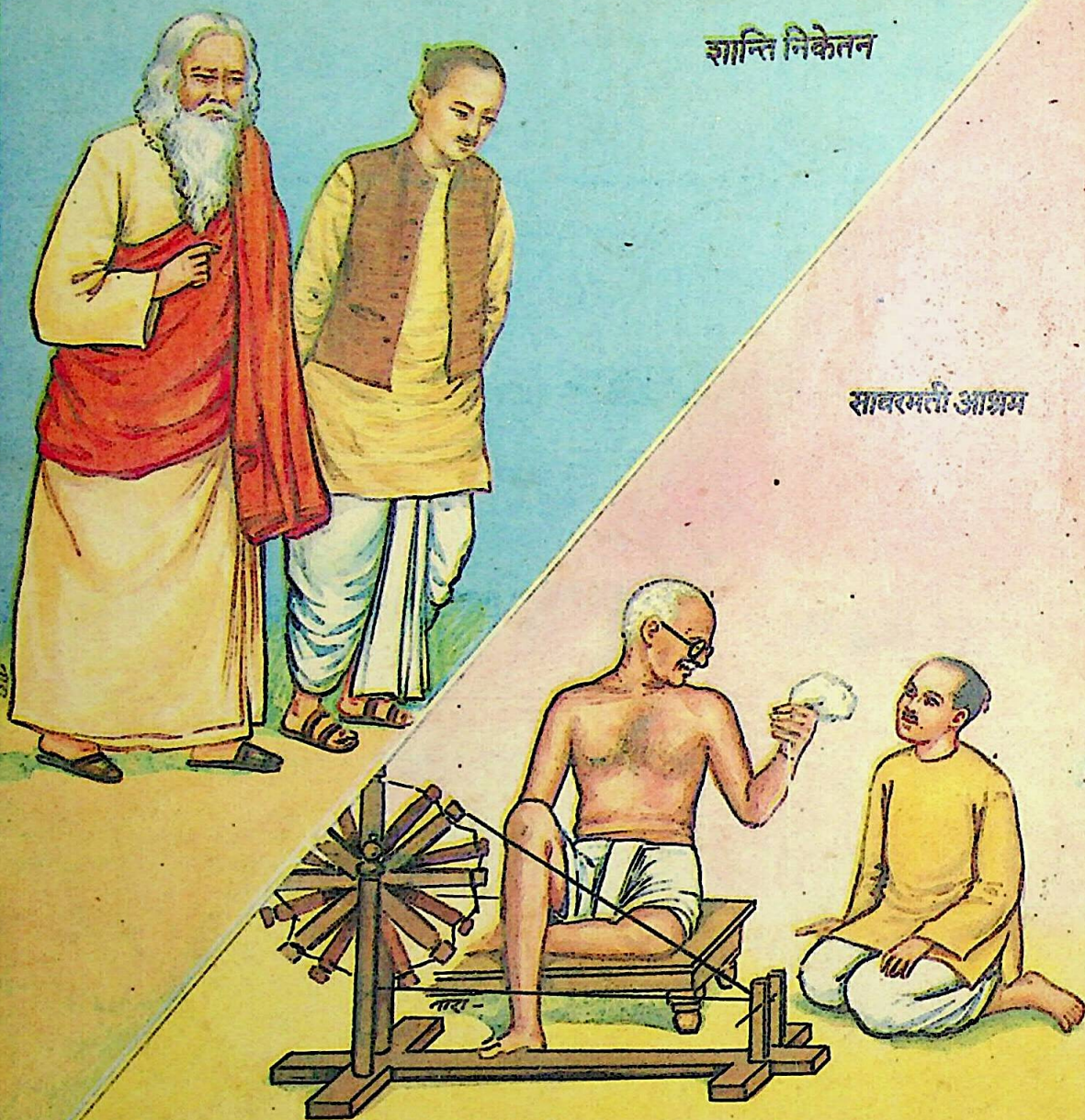
पू. गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य : चित्रमय दर्शन

जेल यात्रा के पश्चात् परोक्ष सत्ता के मार्गदर्शन में जीवन की भावी रीति-नीति के सम्बन्ध में महामानवों से सत्संग-परामर्श।

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा, प्रकाशक व मुद्रक - मृत्युञ्जय शर्मा अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित।